



५२००

१९०१

५२००

५२००

# रेवती-दान-समालोचना

[ मूल-श्रुति हिन्दी अनुवाद सहित ]

लेखक

शतावधानी पं० महाराज श्री रघुचन्द्रजी स्वामी

हिन्दी-अनुवादक

पं० शोभाचन्द्रजी भारिल, न्यायतीर्थ

प्रकाशक

श्री० श्रे० स्था० जैन वीर मण्डल, फेरुही

द्वारा

दास्तामेर ।

१० सं०  
१९९१

वीर संवत्  
२४३१

प्रति  
१०००

---

मधमल लुगिया द्वारा

भादसं प्रेस ( केसरगञ्ज डाकघराने के पास ) भजमेर में  
सञ्चालक—जीतमल लुगिया

जैन समाज के इस बड़े भारी प्रेस में सब प्रकार का  
छपाई बहुत उमदा, सस्ती और जल्दी होती है ।

---

## प्राक्कथन

“जैनै जपतु शासनम्”

भगवान् महावीर का शासन जयवन्त बर्तों, विजयशाली हो  
 सी भावना प्रत्येक जैन में होती है—होनी चाहिये। तीर्थंकरों  
 युग में उनके शासन के साधु-भावक में कितनी प्रेम वृत्ति,  
 जनों धर्म भावना, वैसा पापभिरुत्व, आत्मवेपक वृत्ति और  
 सा शासन प्रेम था! इसका समूह जिनागम और पूर्वाचार्यों के  
 न्यादि पढ़ने से स्पष्ट होता है।

एक ही समय में पार्व प्रमु के शासनवर्ती मुनि और महा-  
 र प्रमु के शासनवर्ती मुनि थे; किन्तु परस्पर की विनीतता,  
 चान्वेपक दृष्टि और निरहंत्व जानकर हमें बड़ा आत्हाद होता  
 ( देखिये उत्तराध्याय सूत्र अध्या० २३ )

उन्हीं पार्थ प्रमु, महावीर प्रमु एवं अन्य तीर्थंकरों के समय  
 नाना क्रियाकांड में रक्त परिभ्राजक, सन्यासी, त्रिदंडों, तापस  
 दि भी थे; किन्तु जिनेश्वर के सचे साधु धात्रकों को उनपर  
 ही माध्याय दृष्टि, अनुकम्पा बुद्धि और आत्म धर्म के सन्मुख  
 णीमात्र को लेजाने की वैसी परोपकार वृत्ति थी! ( देखिये  
 1वर्तीजी के कयो शतक व दर्शय उनके वर्णन से भरे हैं: )



ने बनाये हैं। अग्न विषाखोट की प्रथा कुद्द भन्ने ही भिन्न है; किन्तु अर्थ एक ही है।

श्वेताम्बर दिगम्बरों पर या दिगम्बर श्वेताम्बरों पर कलंक रते हैं, वे दोनों प्रभु महावीर के शासन पर ही कुटारापात करते हैं। श्यामाद न्यायकों समझने वाले विविध नयवाहों से भी समन्वय कर सकता है, तो किन्विन् मूल भेद वाले श्वेताम्बर दिगम्बर मान्यता का समन्वय तो अति मुनुम है ही।

जब कि, दिगम्बर भाइयों ने श्वेताम्बर आगमों पर व्याप्येय हरके महावीर ने मोलाहार किया है ऐमा भगवतो मूत्र के रेवती दान' के अधिकार में सिद्ध करके श्वेताम्बर आगमों को पुद्द समझाने की चेष्टा की है तो उन भाइयों को साथ समझाने के लिये, उनकी दयनीय दशा को सुधार लेने की अनुकम्पा पृथि से तेन-धर्म दिवाकर पं० रत्न शतायधानीजी रत्नचन्द्रजी महाराज। 'रेवती दान' के विषय में आगमोद्धार समिति के विद्वान् मुनि। दम्यों का उपस्थिति में जपपुर विराजते समय यह निबन्ध तय कर दिगम्बर भाइयों का भ्रमनिवारण किया है।

मुनि श्री ने वैदिक के प्राचीन ग्रन्थों ( वैदिक शब्द सिन्धु, नौपथि द्रपण, कैयदेव निपण्टु शालिग्राम निपण्टु आदि ) से, याकरणीय ग्रन्थों ( कारिकाबला, सुभूत संहिता आदि ) से। अर कोष ग्रन्थों ( शब्दार्थ चिन्तामणि आदि ) से, काव्यग्रन्थों वाग्भट आदि ) से; ऐमे २ प्राचीन एवं विद्यमान ग्रन्थों से इस मातोचना में यह सिद्ध किया है कि, जिन शब्दों ( मातौर, कुट्ट, कपोत आदि ) को एकार्य वाची ( पशु, पक्षी ) समझ र व्यापति की जाती है, वे शब्द वनस्पति के नाम वाची भी है।

आज एक प्रमु महावीर के शासन में उन्हीं के तत्त्वज्ञान और फिलोसॉफी को मानने वाले जैन श्वेताम्बर, दिगम्बर, स्थानवासी, तेरह पन्थी आदि फिर्कों में और उसके भी अनेक प्रभेदों में बटे हुए हैं। उन सब जैनों के तोर्यकर ( इष्ट देव ), नवकार मन्त्र ( इष्ट जाप्य ) और तत्त्वज्ञान में कोई फर्क नहीं है। बिल्कुल एक वाच्यता होते हुए भी क्रिया कांडों की, परम्परा की विभिन्न मान्यताओं को प्रधानता देकर परस्पर में लड़ रहे हैं। पत्तों के लिये हम मूलों को छेद रहे हैं।

दिगम्बर भाई कहें कि, श्वेतम्बरों के महावीर ने मांस खाया और श्वेताम्बर कहें कि, दिगम्बरों ने स्त्री-शूद्रों के अधिकार छीन लिये, प्राज्ञाणत्व को अपनाया इत्यादि से महावीर को कलंकित किया। इस प्रकार पारस्परिक विसंवाद से अजैनों को हँसने का, आपके इष्टदेव महावीर प्रमु को और जैन आगम ग्रंथों ( तत्त्वज्ञान ) को क्लंक देने का मौका मिलता है। अपने आपको विद्वान् मानने वाले, शासन के हितैषी कहलाने वाले, शास्त्र के मर्मज्ञ मानने वाले आप स्वयं ही उन प्रतिस्पर्धि के कुल्हाड़े के हाथे हो जाते हैं।

क्या श्वेतम्बरों का महावीर और दिगम्बरों का महावीर भिन्न है ? कमन्डिलासोफी और तत्त्वज्ञान में फर्क है ? कभी नहीं। अधिक से अधिक इतना कह सकते हो कि, हम एक ही रीति के गृथक २ पुत्र हैं। उन्हीं वीर परमात्मा के निर्दिष्ट मोक्षमार्ग को पहुँचने के भिन्न २ मार्ग मात्र हमारे पूर्वज आचार्यों ( जो कि, धृष्टस्थ ही थे, भले ही हमने कुछ अधिक बुद्धिमान होंगे )

बताये हैं। अतः त्रिगाकांड की प्रथा कुछ भले ही भिन्न है; कन्तु ध्येय एक ही है।

श्वेताम्बर दिगम्बरों पर या दिगम्बर श्वेताम्बरों पर कलंक हैं, वे दोनों प्रभु महावीर के शासन पर ही कुठाराघात करते हैं। स्याद्वाद न्यायकी समझने वाले विविध नयवादों से भी फर सक्तता है, तो किंचित् स्थूल भेद वाले श्वेताम्बर मान्यता का समन्वय तो अति सुलभ है ही।

जब कि, दिगम्बर भाइयों ने श्वेताम्बर आगमों पर आक्षेप महावीर ने मांसाहार किया है ऐसा भगवती मूय के 'दान' के अधिकार में सिद्ध करके श्वेताम्बर आगमों को समझाने की चेष्टा की है तो उन भाइयों को सत्य समझाने के लिए, उनकी दयनीय दशा को सुधार लेने की अनुकम्पा पृथिवी में दिवाकर पं० रत्न शतावधानीजी रत्नपन्ड्रजी महाराज 'श्वेतां दान' के विषय में आगमोद्धार समिति के विद्वान् मुनि को उपस्थिति में जयपुर विरागते समय यह निषण्ण कर दिगम्बर भाइयों का भ्रमनिवारण किया है।

मुनि श्री ने वैशक के प्राचीन ग्रन्थों ( वैशक शब्द मित्तु, दर्पण, कैयदेश निषण्डु, शालिग्राम निषण्डु आदि ) से, प्रन्थों ( फारिकावला, सुभुत संहिता आदि ) से, कोष ग्रन्थों ( शब्दार्थ चिन्तामणि आदि ) से, काव्यग्रन्थों ( वाग्भट आदि ) से; ऐसे २ प्राचीन एवं विश्वस्त ग्रन्थों से इस में यह सिद्ध किया है कि, जिन शब्दों ( मातृर, कपोत आदि ) को एकार्थ वाची ( पशु, पक्षी ) समझ आपत्ति की जाती है, वे शब्द वनस्पति के नाम वाची भी हैं।



एक शब्द के अनेक अर्थ होने हैं। सभी जितों के जैन भगवान की वाणी को अनेकार्थं मुक्त तो मानने ही हैं। फिर इन्हीं शब्दों को एकार्थी मान लेना भगवान की वाणी का अपमान करना, या अपनी तुच्छता बताना या अपनी दृष्टिवादी मुक्ति का प्रदर्शन नहीं है ?

अधिक तो क्या कहें ! एक सीधी-मार्दी बात है कि, याज्ञिकादि अनेक प्रकार की हिंसा को रोक कर अहिंसा का मज़ा उठाने वाले, पकाये हुए मांस में भी मनुस्मृत्यम जीवों की उपनि मनाने वाले, पृथ्वी-वाणी-वनस्पति जैसी जीवनावश्यक वस्तुओं के सचित भक्षण में हिंसा बताने वाले, अप्रतिप्राणी आयुष्य वाली देह धारण करने वाले प्रमु महावीर पशु-पक्षी का मांस का भक्षण कर ही कैसे सके ? जैन धर्म का नाम श्रवण करने वाले को विधर्मी भी इसे मंजूर नहीं कर सकता। तो बड़े आश्चर्य और खेद की बात है कि, इन्हीं महावीर के पुत्र दिगम्बर जैन भाइयों को यह कैसे सूझी ?

ऐसा भी मान लिया जाय कि, दिगम्बर भाइयों को श्वेताम्बर सूत्रों पर आरोप करना था, तो भी क्या आज तक किसी श्वेताम्बरीय साधु या श्रावक की हिंसा की और प्रवृत्ति देखी ? यदि श्वेताम्बरी लोग उक्त शब्दों का पशु-पक्षी अर्थ करते तो वे अवश्य मांसाहारी हुए होते परन्तु ऐसा आज तक देखने में नहीं आया है।

मुझे सम्पूर्ण विश्वास है कि, दिगम्बर भाई इस रेवती दान समालोचना को पढ़कर अपने मन्तव्य को सुधार लेंगे और श्वेताम्बरीय जैन भाई भी रेवती दान के शब्दों का परमार्थ

धर्मशास्त्रों का भ्रमनिवारण करेंगे ।

ध्याय ( शास्त्रप्रवृत्त )  
 महावीरबन्धु-म. २४६१  
 वि. सं. १९९२ वैश्वशुद्ध १३

त्रिन शासन का सुष्ठु सेवक  
 धीरजलाल के० तुरखिया  
 प्रा. अधिष्ठाता, जैन गुरुकुल ध्यावर

नोट:—देवती-दान का दण्डोक्ति शासक उन दिग्गज पंडितों  
 के लिये लिखा गया है, जो कि, दवेगांबर भागमों के मनमाने अर्थवाद  
 अशुभ करते हैं । इन पंडितों को विद्वता एवं मुनि प्रमाण सहित उनकी  
 प्रेष भाषा संस्कृत में ही पं० मुनि श्री दयबग्दारी महाराज ने यह पद्य  
 तत्काल निबन्ध लिखा था, जिसका लाभ आम जनता को भी मिले यह  
 आवश्यक समझ करके एक दिग्गज ध्याववारी पंडितजी ने ही इसका  
 द कर देने को कृपा की है, अतः उनको धन्यवाद दिया जाता है ।

# खुश खबर

एक पन्थ दो काज

श्री जैन गुरुकुल, व्यापक ने अपना

प्रेस (द्रापाखाना) शुरू कर दिया है

यदि आप हिंदी, गुजराती, इंग्लिश भाषा में हिमं  
मकार ( कृष्णम् पत्रिका, हुरी. पत्र, रिमोट बुक, ब्रॉड  
पढ़ी पुस्तक आदि ) की सुन्दर शुद्ध द्वाद का, का  
कराना चाहते हैं तो गुरुकुल प्रि० प्रेस में ही द्वापने  
का आर्टर दीजिये ।

आपका काम ठीक समय पर, सुन्दर और शुद्ध  
मकार से होगा । टाम भी चाजिव लगेगा और गुरु-  
कुल के उद्योग विभाग को उच्चेजन मिलेगा ।

पत्र व्यवहार का पता—

मैनेजर, श्री जैन गुरुकुल प्रिंटिङ्ग प्रेस  
व्यापक ( राजपूताना )

# दो शब्द

महानुभावो,

'श्वेताश्वर मत समीक्षा' पुस्तक तथा जैन मित्र आदि पत्रों में रेवती का भगवान को दिया आहार अभक्ष्य था तथा और भी कई आरोप विश्व वन्द्य वीर भगवान पर पढ़कर रोमांच कांपने लगे।

आक्षेपों को निर्मूल सिद्ध करने के लिए परम पूज्य, प्रातः स्मरणीय शातावधानीजी वंशित मुनि श्री रत्नचन्द्रजी स्वामी ने 'रेवती दान समालोचना' शीर्षक लेख लिखा, जो जैन प्रकाश के प्रधान ( महावीररांक ) में प्रकाशित हो चुका है। किन्तु लेख संस्कृत भाषा में होने के कारण आम जनता को लाभ कम दे सका। अतः सर्व साधारण के हितार्थ यह लेख हिन्दी भाषानुवाद सहित प्रकाशित किया गया है।

लेख में स्वामीजी महाराज ने सप्रमाण, आगम, तर्क व शब्द शास्त्रानुसार विपक्षी समाज का भ्रम निवारण व समाज पर आरोपित कलहों को निर्मूल सिद्ध कर दिया है और यह भली भाँति दृष्टेयित है कि रेवती का दिया हुआ आहार कैसा था? आगम व शब्द शास्त्रानुसार यह स्वयं सिद्ध है कि कपोत कुक्कुट, माण्डार आदि शब्द केवल पशु द्रोतक ही नहीं, किन्तु बनस्पति द्रोतक भी हैं।

जो महानुभाव हमारे आगम, साम्प्रदायिक कट्टरतावश, केवल खंडनात्मक दृष्टि से ही देखने हैं, वे सूरों के वास्तविक भाव ही न समझ सके तो भला रहस्य की खोज तो दूर रहो। इसी कारण पंडित अजितप्रसादजी शास्त्रों ने अपनी कीर्ति बरखाती की धुन में रेवती के लिए मांसाहारिणी आदि शब्द लिखने का दुस्साहस किया है जो श्री श्वेताम्बर आगमों की अनभिज्ञता स्पष्ट परिचय है।

पाठक, इस पुस्तक को जिज्ञासा भाव से तत्र निर्णय की दृष्टि से पढ़ें और वास्तविक रहस्य का निर्णय करें।

नम्र निवेदन

धनराज जैन

मंत्री

श्री श्वेताम्बर श्यामक वासी, जैन धीर मंडल केकड़ी ( अजमेर )

श्री रवे. म्या. जैन वॉरमण्डल, केकड़ी का

## संक्षिप्त परिचय

केकड़ी ( जि० अजमेर ) में पहिले कोई म्या० जैन संस्था नहीं थी । न कोई विद्वान् मुनि महत्त्मा का पधारना होता था । सद् भाग्य से गं० १९८७ फाल्गुन कृष्ण २ को महावैरागो, एखान्द मौन योगी प्रेमी, आदर्श मा० व० आत्मार्य मुनि श्री मोहनश्रपित्री महाराज श्री का पदार्पण हुआ । मुनि श्री के उपदेशामृतसे म्या० जैन श्री संघ में नूतन जागृति हुई और चैत्र शुक्ला १ सं० १९८८ को उक्त मंडल की स्थापना हुई ।

मंडल के घर्म प्रेमी छत्ताही मंत्रा धनराजजी जैन और समासदों ने श्री संघ की सेवा करना प्रारम्भ किया, जय से प्रति वर्ष चालुर्मास ( मुनिवर या महासतीजी के ) होने लगे । घर्मस्थानक बन गया और मूत्र बत्तोमी, टीकार्ग, तथा सामाजिक, धार्मिक, राष्ट्रीय आदि १५०० पुस्तकों का संग्रह हो गया ।

इस प्रकार पुस्तकालय और बांधनालय चल रहा है । मंडल के आयुष्य और कार्य की रिपोर्ट यथा समय प्रकट होती रहती है । उक्त मंडल की तर्क से ही इस समालोचना की ५०० प्रति छपायी गयी है ।

स्वान २ पर ऐसी मुसंगठित मंथार्यें ग्लोबलर शासन सेवा का सुयोग प्राप्त करना जैन भाइयों का पवित्र कर्तव्य है ।



## आचार मृत ग्रन्थों का सूची

१. रत्नोपधि दर्पण—सं० कविराज विरजचरण गुप्ता काव्य-  
भूषण, राजवैन, कूच ( बिहार ) सं० १९०९.
२. सुश्रुत संहिता—हिन्दी भाषानुवाद युक्त, मकाराह—  
श्यामलाल, श्रीकृष्णलाल, मन् १८९६.
३. वैद्यक शब्द सिन्धु—प्र० कविराज श्री उमेशचन्द्र गुप्त  
मन् १८९४.
४. कारिकावली—मिद्वान्त मुक्तावली संहिता श्री विश्वनाथ  
पंचानन भट्टाचार्य विरचिता मन् १९१२ प्र. शु. वि. प्रेम
५. कैयदेव नियण्टु—कर्ता-आयुर्वेदाचार्य पं. सुरेन्द्र मोहन  
B. A. वैद्य कनानिधि (कलकत्ता), आचार्य-दयानंदा ।  
युर्वेदिक कलित्र लाहौर ता. २०-३-१९२८.  
प्र. मंडरस्यंद लक्ष्मणदास, सैदमिठ्ठा बाजार, लाहौर.
६. शब्दार्थ चिन्तामणि—प्रका. मेरुपाटेश्वर महाराणा सा.  
धी. साज्जनसिंहजी ( उदयपुर ), सा. १९४० में अद्य  
साज्जन संमालय से प्रकाशित.
७. शालिग्राम नियण्टु—सं. शालिग्राम वैश्यः ( गुरदादाद )  
प्र. रोमराजः श्रीकृष्णदासः ( बम्बई ) सं. १९६९.
८. वाग्भट्ट—अरण्यदत्त प्रणीत व्याख्या सहित  
प्र. पाण्डुरंग जावजी ( निर्गुणसागर मुद्रणालय )  
बम्बई. शकाब्द १८४६ मन् १९२५.

रेवतीक्षान समालोचना के सम्पादन में उपरोक्त ग्रन्थों का  
आधार लिया है । अतः उक्त ग्रन्थों के सम्पादक एवं प्रकाशकों  
का आभार प्रकट किया जाता है ।

लेखक—



# संकेत सूची

हे. च.	हेमचन्द्राचार्य
रा. नि.	राजनिघण्टु
व.	वर्गः
त्रि. का.	त्रिकाण्डशेषः
भा. पू	भाष्यप्रकाश पूर्व भाग
सु	सुश्रुत
सु.	सूत्रस्थान
अ.	अध्याय
मे.	मेदिनी
वा.	वाग्भट
उ.	उत्तरखण्ड, उत्तर दंत्रम्
रत्ना.	रत्नावली
राज.	राजःवल्लभः
प.	परिच्छेदः

---

शिवतीर्थान समालोचना हिन्दी भाषानुवाद को प्रति १००० निम्न सज्जनों ने अपने स्वयं से छपायी है । वे धन्यवाद के पात्र हैं ।	
श्री श्वे. श्या. जैन वीर मण्डल, केकड़ो	प्रति ५००
श्री. कुशालचन्द्रजी अमयकुमारजी, अल्वर	प्रति १००
श्री. विरजलालजी रामचक्रमजी जैन	” १००
श्री. छोटेलालजी पालावत जैन	” १००
श्री. कांधला के मुख प्रायक भाई	” २००

वीर भगवान् ने दूसरा यह वाक्य कहा था : मूल वाक्य—“अथ ये  
अथे परिधामिण् मग्गार क्वाण् कुण्डुव मसए तमादराहि ।” यह दूसरे  
वाक्य का समुद्रित अर्थ है ॥ ५१ ॥

इस अर्थ की निरूपणा—

इस अर्थ में न कोई अनुचितता है, न दोष है और न कोई  
आगम-विरोध ही है । अतः यह अर्थ संगत है ॥ ५२ ॥

मांस अर्थ करने से ‘दुग्धेयदीरकटय’ इन तीन शब्दों का परस्पर संबंध  
का न बनना, मग्न आदि शक्ति की प्राप्ति, स्वर्ग आदि सुखों की अप्राप्ति  
तथा मोक्षोद्धार का निषेध करने वाले आगम-वाक्यों में विरोध, आदि को  
को अनेक दोष आते हैं, इसमें से एक भी दोष बनाने-अथे करने से  
नहीं रहता । अतः बनाने अर्थ ही सर्वथा संगत है । इसमें कृपा भी  
असंगति का अनुपपत्ति नहीं है ॥ ५३ ॥

मांसार्थ का परित्याग करके, बनाने अर्थ की गति होने  
में शैली द्वारा दिये हुए दान की पूर्ण छुटता निश्चित होनी  
है ॥ ५३ ॥

शैली के द्वारा दिये हुए दान की परीक्षा करने के लिए प्रारंभ किये  
हुए इन निबंध में, अगला विच्छेद संबंध इसने हुए वाक्यार्थ का विचार  
करने से, मांसार्थ का निराकरण करके बनाने-अर्थ की गति होने से  
यह स्पष्टानुभव निश्चित है कि शैली के द्वारा दिये हुआ दान अछूट नहीं

कथं निरिचनीमत्याह—

आगमोद्धारसंस्थायाः, मिलितानां सभासदाम् ।

परस्परप्रविशेण, जातोऽयमर्थनिश्चयः ॥ ५४ ॥

आगमोद्धारसंस्थाया इति—श्री अजमेराख्यपत्तने साधु-  
सम्मेलनप्रसङ्गे शास्त्रपर्यालोचनकृते स्थापिता याऽऽगमोद्धारसमिति-  
स्तस्या. सभासदः प्रतिनिधियो गण्युपाध्याययुवाचार्यपूज्यश्रमोत्स-  
र्गविप्रभृतयः । ये संप्रति जयपुरपत्तने विराजन्ते शास्त्रपर्यालोच-  
नार्थं मिलितानां तेषां परस्परप्रविशेण—परस्परं विहितशास्त्रपर्या-  
लोचनेन अयं—प्रकृतनिबन्धगतार्थनिर्णयः कृतः साधित-  
इत्यर्थः ॥ ५४ ॥ प्रशस्तिः

खनिध्यंकधरावर्षे, माघशुक्लाष्टमीतिथी ।

भौमे भारतविख्याते, जयपुराख्यपत्तने ॥ ५५ ॥

पूज्यगुलावचन्द्राङ्घ्रिचम्बुजपरागसेविना ।

रत्नेन्दुना निबन्धोऽयं, निर्मितो मुक्तयेऽस्तु नः ॥ ५६ ॥

खनिध्यंकधरावर्षे इति—खं शून्यं निधिर्नव अङ्को नव  
धरा चैका । अङ्कानां वामतो गतिरिति १९९० मिते वर्षे—विक्र-  
माब्दे माघमासशुक्लपक्षस्याष्टमीतिथौ भौमे मंगलवासरे भारतवर्ष-  
प्रसिद्धे जयपुराख्ये पत्तने लिम्ब्रडोसम्प्रदायस्याचार्यवरस्य पूज्यश्री-  
गुलावचन्द्रजित्स्वामिनश्चरणकमलरजःसेवकेन रत्नचन्द्रमुनिना  
विरचितोऽयं निबन्धो नाऽस्माकं सर्वेषां च मुक्तये कल्याणायस्तु  
भवत्विति लेखकभावना ॥ ५५—५६ ॥

नमोऽङ्गनिधिभूवर्षे, माघरुद्रदलेशनी ।

पद्मम्यमृजुटीकेयं, स्वोपज्ञं पूर्णतां गता ॥ ? ॥



विजली से चलनेवाला अजमेर में बहुत बड़ा प्रेम मुक्त गया

## आदर्श प्रेस, अजमेर

उमदा काम, समय की पावन्दी और मुनासिब रेट  
हमारे खास विशेषताएँ हैं।

संस्कृत, हिन्दी, उर्दू व अंग्रेजी का सब तरह का काम हमारा  
यहाँ बहुत सुन्दरता से किया जाता है। प्रूफ-संशोधन  
का भी प्रबंध है, कागज़ का स्टॉक भी रहता है।

किताबों व पत्र पत्रिकाओं के छापने का खास प्रबन्ध है।  
जैनी भाइयों से प्रार्थना है कि वे अपनी छपाई का सब काम अपने  
इस जैन प्रेस में ही भेजने की कृपा करें।

निवेदक—जीतमल लूणिया, सञ्जालक-आदर्श प्रेस।

पता—आदर्श प्रेस, अजमेर।

(केसरगंज टाकखाने के पास)

## आदर्श पुस्तक-भण्डार

आदर्श प्रेस के मकान में ही यह पुस्तक भण्डार खुला  
है। हिन्दुस्थान भर में मिलनेवाली सब प्रकार की हिन्दी  
की उत्तमोत्तम पुस्तकें हमारे यहाँ मिलती हैं। सस्ता-साहित्य  
भण्डाल के राजपूताना प्रान्त के हम सोल एजन्ट हैं।  
अश्लील या मनुष्य-जीवन को गिरानेवाली पुस्तकें हम नहीं  
बेचते। बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मँगाइए।

पता—आदर्श पुस्तक-भण्डार, केसरगंज, अजमेर।



# शिक्षादायी सुन्दर सस्ती

और

उपयोगी पुस्तकें ।

१—जैन शिक्षा-भाग १	-)॥	१८—मोक्ष की कुञ्जी २ भाग
२—जैन शिक्षा-भाग २	=)॥	१९—आत्मबोध भाग १-२-३
३—जैन शिक्षा-भाग ३	≡)	२०—आत्मबोध भाग २-३
४—जैन शिक्षा-भाग ४ (सचित्र)	≡)॥	२१—काव्य विश्वास
५—जैन शिक्षा-भाग ५	↳)	२२—परमात्म प्रकाश
६—बालगीत	)॥	२३—भाव अनुपूर्व
७—भादर्श जैन	)	२४—मोक्ष की कुञ्जी वेभाग
८—भादर्श साधु	)	२५—सामायिकप्रति०प्रदर्शिका
९—विद्यार्थी व युवकों से	=)	२६—तत्त्वार्थाधिगमसूत्रम्
१०—विद्यार्थी की भावना	-)	२७—आत्मसिद्धि
११—सुखी कैसे बनें ?	-)	२८—आत्मसिद्धि और सम्यक्त्व
१२—धन का दुरुपयोग	)॥	२९—धर्मों में भिन्नता
१३—रेशम व शर्वा के वस्त्र	)॥	३०—जैनधर्म पर अन्य
१४—पशुबध कैसे रहे ?	=)॥	३१—समकित के चिह्न १ भाग
१५—आत्म-जागृति-भावना	)	३२—समकित के चिह्न २ भाग
१६—समकित स्वरूप भावना	-)॥	३३—सम्यक्त्व के आठ अंग
१७—मोक्ष की कुञ्जी १ भाग	=)	३४—महावीर और कृष्ण

व्यवस्थापक:—

आत्म-जागृति-कार्यालय, टि० जैन-गुरुकुल, व्याव

नथमल लूणिया द्वारा

भादर्श प्रेस ( केसरगंज बाकशाने के पास ) प्रथम में छपी ।





॥ ॐ श्री ॥

## रेवती-दान-सफल-लोकना

लोकसः—

शतावधानी पंडित महाराज श्री रत्नचंद्रजी स्वामी

मंगलाचरणम् ।

प्रारंभितनिबन्धपरिसमाप्त्यर्थमिष्टदेवतानमस्कारात्मकमङ्गलमातनंति—

नमस्कृत्य महावीरं, भवपाथोधिपारगम् ।

रेवतीदत्तदानार्थं, याथातथ्यं विचिन्त्यते ॥ १ ॥

नमस्कृत्येति—उपपदविभक्तेः कारकविभक्तेर्ब्रह्मीयस्त्यान्मर्श-  
वीरमिती कारकविभक्तिर्द्वितीया । अन्येष्वपीष्टदेवेषु सत्सु विरा-  
तया महावीरस्योपादानं वर्तमानशासनपतित्वात्प्रकृतनिबन्धेन  
सम्बन्धात् । युद्धविजेता वीरः, कर्मयुद्धविजेता तु महावीरः, वीरे-  
ष्वपि महान् वीरः, अतुल्यगणकमदर्शको वर्धमानभ्यामीत्यर्थः ।  
पराक्रमो दर्शित इत्यत्र आह-भवेति, भवः संसारः स एवागाधत-  
त्वाद्योधिः समुद्रात्म्य पारमर्शनं गच्छतीति भवपाथोधिपारगातम् ।  
रेवतीति, रेवतीरुया मण्डिकामानिवासिनी काचिद् गृहिणी, यथा



॥ ॐ अर्ह ॥

## रेवती-दान-सम-फलोक्तम्

लेखकः—

शतावधानी पंडित महाराज श्री रत्नचंद्रजी स्वामी

मंगलाचरणम् ।

श्रीरामसितानिगन्धपरिसमाप्ययथांनिहृदेवतानमस्कारात्मकमङ्गलमातनोति—

नमस्कृत्य महावीरं. भवपाथोधिपारगम् ।

रेवतीदत्तदानार्थं, याथातथ्यं विचिन्त्यते ॥ १ ॥

नमस्कृत्येति—उपपदविभक्तेः कारकविभक्तेर्वैलीयस्त्वान्महा  
वीरमिती कारकविभक्तिर्द्वितीया । अन्येष्वपीष्टदेवेषु सन्तु विशेष  
तया महावीरस्योपादानं वर्तमानशासनपतित्वात्प्रकृतनिगन्धेन तस्य  
सम्बन्धात् । युद्धविजेता वीरः, कमयुद्धविजेता तु महावीरः, वीरे-  
ष्वपि महान् वीरः, अतुलपराक्रमदर्शको वर्धमानम्यामीत्यर्थः । ॥  
पराक्रमो दर्शित इत्यत्र आह-भवेति, भवः संसारः स एवागाधत्वा-  
त्पाथोधिः समुद्रमस्य पारमन्वं गच्छतीति भवपाथोधिपारगस्तम् ।  
रेवतीति, रेवतीक्या मेरिद्विक्रमामनिवासिनी काथिद् गृहिणी, यथा



महावीरस्वाम्यर्थं सिंहानगाराय भैषज्यं प्रतिलाभितम् । तथा इ-  
 यदानं तस्यायंः पदार्थस्तद्विषये केषांश्चिद्ब्रह्मा विद्यते, यत्तदात्म-  
 मांसमासीदन्ये षडन्ति तद्वस्तु वनस्पतिकलादिजन्यमौषधमासीत्  
 पक्षद्वये किं यथातथमिति विशेषेण पर्यालोचनपूर्वकं प्रमाणपुरस्ता-  
 धिन्यते विचार्यत इत्यर्थः ॥ १ ॥

### चोरस्य रोगोत्पत्तिः ।

रेवतीदानस्य प्रबोद्धनं महावीरस्वामिनः शरीरे रोगोत्पत्तिः । तस्य  
 निमित्तं वर्धमानस्वामिनं प्रति गोशालकेन प्राक्षिप्ता तेजोलेश्या तद्वर्धनाया-  
 इ-

गोशालकेन वित्तिप्ता, तेजोलेश्या जिनं प्रति ।

अथपि नास्पर्शदीरं, तथाप्यभूद्यथाकरो ॥ २ ॥

गोशालकेनेति—अस्य विस्तृतार्थस्तु भगवतीसूत्रे पञ्चदश-  
 शानके । अथ तु सम्यन्धमात्रदर्शकः संक्षिप्तार्थः । गोशाल-  
 प्रक्षिप्ततेजोलेश्याया महावीरस्वामिशरीरेण सह संपर्को नाभूत्  
 शरीरसमीपप्रदेशाद्देष तस्याः परावृत्तत्वात् । तथापि सामीप्येन  
 धानजनकत्वात्सा तेजोलेश्या रोगोत्पत्तिजनकाऽभवदित्यर्थः ॥ २ ॥

### रोगस्यरूपम् ।

महावीरस्वामिनः शरीरे रोगोत्पत्तिः—

पित्तज्वरस्तनो जातस्तथा वर्चसि लोहितम् ।

असतो विपुक्तोदाशो, देहे वीरस्य चाभवत् ॥ ३ ॥

रेवती, मैत्रिक ग्राम में रहने वाली एक वृद्धिणी (पृथ्वी भी) थी जिसने महावीर स्वामी के लिए, मिह भनगर को भोज्य दान दिया था। रेवती द्वारा दिये हुए दान के विषय में किन्हीं-किन्हीं को आशङ्का है। किसी का कहना है कि उसने 'मांस' दिया था और कोई-कोई कहते हैं कि मांस नहीं बल्कि मनरपति के कल घर्गरह से बनी हुई दवा दी थी। इन दोनों पक्षों में से कौन सा पक्ष सत्य और कौन सा भ्रष्टाचार है ? इसका विशेष रूप से आलोचन और प्रमाण पूर्णक विचार किया जाना है ॥ १ ॥

### धीर को रोगोत्पत्ति

महावीर स्वामी के शरीर में रोग की उत्पत्ति होना रेवती के दान का निमित्त या और रोग का कारण था—गोशालक के द्वारा महावीर स्वामी पर पड़ी हुई तेजो अशुभा। इन्हीं बातों को बतलाते हैं—

गोशालक के द्वारा भगवान् को और पँकी हुई तेजो लेश्या ने यद्यपि धीर भगवान् को स्वर्ण नहीं दिया, तो भी उसने उन्हें ज्यया ( रोग जन्य पीडा ) हो गई ॥ २ ॥

इसका विस्तृत विवरण भगवती सूत्र के पाठ्यपत्रों शतक में है। वहाँ निम्न प्रकारण याने के लिए संक्षेप में कह दिया है। गोशालक के द्वारा पँकी हुई तेजो लेश्या का महावीर स्वामी के शरीर के साथ स्वर्ण नहीं हुआ था—शरीर के पास से ही यह लौट गई थी। फिर भी लेश्या लक आने के कारण उसने भ्रष्टाचार उत्पन्न कर दिया और इसी कारण उसे रोग की उत्पत्ति का कारण कहा गया है ॥ ३ ॥

### रोग का स्वरूप

महावीर स्वामी को वैसा रोग हुआ था, वह बताते हैं—

तेजो लेश्या लेश्या आने से भगवान् धीर के शरीर में विष

पिरोति—ततन्नेत्रोलेश्यामामीप्यात्पित्तज्वरो, चर्चमिलोदितं  
 विपुलो दाहश्चेत्येतत्त्रिविधरोगोद्भवः श्रीवीरस्य देहेज्जायत ।  
 त्रिविधोऽपि दुस्तह इति तदुक्तं भगवत्याम्—“तए एं समए  
 भगवओ महावीरस्म सरीरगंसि त्रिपुले रोगायंके पाउमूए हउउ  
 जाव दुरहियासे पित्तज्जरपरिगयसरीरे दाहवकंतीए यात्रि विइए  
 अवियाइं लोदियवचाइंपि पकरेइ” —(भग० १५; १ पृ० ६८५) ॥३

### जनताप्रवादः ।

अनेन जनसमुदाये यः प्रवादोऽमृतमाह—

गोशालेन पराभूतो, वीरः पित्तज्वरादितः ।

मृत्युमाप्स्यति परमास्यां, ह्यस्यः प्रसूता कथा ॥ ४ ॥

गोशालेनेति—लोके ईदृशी वातो प्रसूता यन्महावीरस्वानि  
 गोशालकयोर्विवादे गोशालको विजेता महावीरस्वामी च पराजितः ।  
 गोशालकस्य तपस्तेजसा परिभूयमानः श्रीवीरः पित्तज्वरव्यापारशीरे  
 दाहापक्रान्त्या छद्मस्थः सन् मासपट्कान्ते कालधर्मं प्राप्स्यति ।  
 मन्यते गोशालोक्तिः सत्या भविष्यतीति प्रवादो लोकापवादरूपे  
 जातः । तदुक्तम्—“एवं खलु समणे भगवं महावीरे गोशालस्  
 मंखलिपुत्तस्स तवेणं तेएणं अत्राइठ्ठे समाणे अंतो धएहं मासाए  
 विजाज्जरपरिगयसरीरे दाहवकंतीए छउमत्ये पेव कालं करेस्सति”  
 (भग० १५; १; पृ० ६८५) ॥ ४ ॥

जलन होने लगी ॥ ३ ॥

तेजो छेड़या पास तक आई इस कारण महावीर के शरीर में विष  
बुरा हुआ, मूत्र में रक्त आने लगा और तेज चलन होने लगी। इस प्रकार  
तीन प्रकार का रोग उन्हें हो गया। यह तीनों ही प्रकार का रोग महावीर के शरीर में  
था। भगवती मूत्र में बढ़ाई—तब अमण भगवान् महावीर के शरीर में  
बहुत से रोग और आर्तक प्रगट हो गए। ये तीस और असाध्य थे।  
उनका शरीर विश्व उर से ब्याप्त हो गया, जलन होने लगी और सूनी  
एहन लगाने लगे ॥ ३ ॥

### जनता-प्रवाद—अफवाह

इस बीमारी के कारण लोगों में जो अफवाह उठी, उस वतों में -  
गोशाला के द्वारा महावीर परास्य कर दिये गये हैं। विरा  
कर आदि के कारण छद्मरथ महावीर छद्म महीने के भीतर ही  
भीतर शून्य हो जायेंगे। इस प्रकार की अफवाह लोगों  
में छड़ने लगी ॥ ४ ॥

लोक में ऐसी बात फैल गई कि गोशाला और महावीर स्वामी के  
बिबाद में गोशाला विजयी हुआ और महावीर हार गए हैं। गोशाला के  
तप के प्रभाव से पराभव पाने वाले धीमहावीर स्वामी का शरीर विश्व  
उर से आकाम्न हो गया है और दाह होने से वे छद्मरथ ही रह कर छद्म  
माह में काल-धर्म शून्य—हो जायेंगे। मादम होता है, गोशाला का  
कथन-वश सच्य होगा। इस प्रकार की बातें लोक में फैलने लगीं  
बढ़ा भी है—

ज्यों बर्ण करते हैं कि संलक्षियुष गोशालक के तपरतेज में परा-  
भव पाये हुये अमण भगवंत महावीर छ- महीने के अंदर विश्व ब्यवहारि  
रोग से छद्मरथ अक्षरया में ही काल धर्म पावेंगे ॥ ४ ॥



## लोकापवादजन्यं मुनेर्दुःखम् ।

अस्य प्रवादस्य मुनिर्जनवपि कीदृशी परिणतिर्जातेति दर्शयति—

स्मृतेरस्य प्रवादस्य, चित्ते चिन्ताव्यथाऽभवत् ।

सिंहाभिधानगरस्य, ध्यानस्थस्य वनान्तिके ॥ ५ ॥

स्मृतेरिति—मेरुदिकप्रामस्येशानकोणे विद्यमानस्य शाल  
कोष्ठकाख्योद्यानस्य समीपे मालुकाकच्छकनाम वनमासीत् । तत्र  
श्रीवीरप्रभुः सपरिवारः समवमृतः । सिंहाभिधानस्तच्छिष्यो  
मुनिगणान्वितो वनस्यैकान्तप्रदेशे ध्यानमग्नोऽभवत्तदानीं पूर्ण  
श्रुतस्य लोकप्रवादस्य स्मृतिर्जाता, तथा च मनसि महद्दुःखं  
समजनि । व्यवहार इव धर्मोऽपि लोकापवादो धर्मिजनहृदयं  
परितापयत्येव । अत एवोक्तं—“यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं, नाकर्ण  
णीयं नाचरणीयम् ।” तदुक्तम्—“तेणं कालेणं २ समणस्स  
भगवओ महावीरस्स अंतेवासी सीहे नामं अणुगारे पगइमए  
जाव विणीए मालुयाकच्छगस्स अदूरसामंते छट्ठंछट्ठेणं अनि  
क्खित्तेणं २ तवोकम्भेणं उट्ठं वाहा जाव विहरति, तए णं तस्स  
सीहस्स अणुगारस्स माणंतरियाए वट्टमाणस्स अयमेयारूवे जाव  
समुप्पजित्था—एवं खलु ममं धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स  
समणस्स भगवओ महावीरस्स सरीरगंसि विउले रोगायंके पाउ  
भूए उज्जले जाव छउमत्थे येव कालं करिस्सति, वदिरसंति य णं  
अन्नतिरियया छउमत्थे येव कालगए, इमेणं, एयारूवेणं महया  
मणोमाणसिएणं दुक्खेणं अभिभूए समाणे आयायणभूमिओ  
पघोउदइ” —(भग० १५;१, पृ० ६८६) ॥ ५ ॥

## लोकापवाद से मुनियों को शोक—

इस अपवाद से मुनिजनों को मोक्षितवृत्ति कमी हुई, सो करते हैं—

इस अपवाद के स्मरण से, वन में ध्यान करने वाले सिंह नामक अन्नगार के मन में चिन्ता जन्य पीड़ा हुई ॥ ५ ॥

मैदिक ग्राम से ईशान कोण में विद्यमान शालग्राम स्थान के पास मालुय कण्ड नामक एक वन था । वहाँ भगवान् महावीर अपने शिष्यों के साथ पधारे । भगवान् के शिष्य मुनि-गुण से युक्त सिंह अन्नगार वन के एक एकान्त प्रदेश में स्थान में लीन हुए । उस समय पहले सुने हुए उक्त लोक-अपवाद का उन्हें स्मरण हो आया । उनके मन में अत्यधिक दुःख हुआ । जैसे व्यवहार में लोकापवाद असत्य होता है वैसे ही चर्मा-रोगा पुष्टों को चर्म विषयक अपवाद भी असत्य होता है । इसीलिए कहा है कि "सुख कार्य भी यदि शोक विरह हो तो नहीं करना चाहिए ।"

बहा भी है—उस काल में, उस समय अन्नगार भगवान् महावीर के शिष्य, भद्र स्वभाव वाले, विनयी सिंह अन्नगार मालुयाकण्ड के निवृत्त मौजूद, पशुभक्त करते हुए, वहाँ ऊपर की वीणाकर तपस्या करते हुए निवृत्त थे । स्थान-अन्नगार सिंह अन्नगार को देखा विचार आया कि मेरे चर्माचार्य, चर्मोपदेशक, अन्नगार भगवान् महावीर के शरीर में विपुल रोग-आर्तक प्रकट हुआ है । ( यावत् ) उपस्थानपरथा में शरीर स्वस्थ करेंगे, वेसा अन्य वैदिक करेंगे । सिंह अन्नगार इस महान् आनसिक दुःख से बड़े दुःखी हुए और आनापन-भूमि में पीछे लौटे ॥ ५ ॥



## इस तीव्र दुःख के पाद क्या हुआ ?

आश्वासन देने वाला वहाँ कोई नहीं था। अतएव उनका दुःख प्रतिसृष्ट बढ़ता-बढ़ता अन्त में आँसुओं के रूप में बाहर निकलन लगा, यही बताते हैं—

यह अनगार मालुयाकच्छ वन में जाकर आर्षस्वर से रोने लगे कि हाय ! हाय !! स्वामी ( महावीर ) की मृत्यु होने पर धर्म की हीनता होगी ॥ ६ ॥

यद्यपि और और से चिलाकर आर्ष स्वर से रोना आर्षभ्यान के अन्तर्गत है तथापि सिंह अनगार का यह रोना आर्षभ्यान नहीं है क्योंकि एक तो यह धर्म सम्बन्धी शुभ राग से उत्पन्न हुआ और दूसरे उसमें गुरुभक्ति की भावना थी। उन्हें तो केवल यही चिन्ता थी कि यदि एक मास के भीतर महावीर स्वामी का अन्त्यान हो गया तो अन्व्य प्रतापशुभी क्या कहेंगे ! भ्रातृसन्देश से वीर-शासन को मलिन करेंगे और कहेंगे कि महावीर तो उपरुध अवस्था में ही मर गए। इस प्रकार भविष्य धर्म की हानि के विचार से ही वे रोये थे। कहा भी है—मिस मालुयाकच्छ था, उसी ओर से आये और मालुयाकच्छ में प्रविष्ट हुए। उसमें प्रविष्ट होकर चिला चिलाकर रोने लगे ॥ ६ ॥

## शिष्य को आश्वासन

भगवान् वीर ने सिंह अनगार को शीघ्र मुलाने के लिए मुनियों को भेजा। उतान से आये हुए सिंह अनगार को वीर ने इस प्रकार आश्वासन दिया ॥ ७ ॥

“कौन शिष्य ? गुरुभक्त होय जो, कौन गुरु ? दितदेशक हो।” यह मलिरामभाषा में चिला हुआ गुरु शिष्य का स्वरूप शब्द ही है। अतएव शिष्य का रोदन भगवान् महावीर से जाना। उन्होंने तत्काल अमणों को बुलाकर कहा—“बोमल एतएव वाकर वीर शिष्य सिंह अनगार

वदद्वीरः—मम शिष्यः सिंहमुनिः प्रकृतिभद्रको मालुयाकृत्वा  
 वने रोदिति, तमाह्वयत । अत्यैतच्छीघ्रमेव तदनं गताः ममवः  
 सिद्धान्तगारं सावधानं कृत्वा कथयन्ति तं वीरसन्देशम् । सोऽ  
 द्रुतमेव गुर्वासां शिरसि कृत्वा तैः सह मालुकाकृत्वा  
 सकोष्ठकवनमागत्य शुरुं नत्वा समीपे स्थितवान् । समुपस्थितं  
 इत्थं वक्ष्यमाणप्रकारेण समावसन् अन्तर्भावितव्यर्थतया  
 मास इत्यर्थः ॥ ७ ॥

सर्वोपभोगा तं शुरुं प्रापन्नपूर्वकभिरपमाः—

रोदिसि त्वं कथं भद्र ! पणमास्या नाम्नि मे मृतिः ।

अर्द्धशोडशवर्षान्तं, स्थास्यामि त्रितिमण्डले ॥ ८ ॥

रोदिसीति—श्रीमहावीरः सिंहं वक्ति—तत्र रोदनं

नाम्नि रोदनकारणम् । अज्ञा लोका न जानन्ति सत्यम् । ।

लोकप्रवादः । एतन्न्यायप्रयोजकं गोशालकवाक्यमस्ति ।

सत्यमेव । कारणेऽन्ये कार्यमवसायम् । न पणमास्यैव,

शुरुं भवति । अर्द्धं त्वस्मिन् भूतजे ।

विचिन्त्यामि अतो विवादं मा कुरु । तदुक्तं—“तं गो त्वज्जु

भीडा ! गोशातमम मंत्विपुत्तम तवेणं

अर्द्धं मामाणं जाय कालं करोमं, अर्द्धं अत्राहं

साहं तिमं शुरुं विद्विस्मानि”—(भग० १५; १, ५० ६८१) ॥

इत्यन्तरेणैव रोदिति तत्र विमिति शुरुं नत्वात्वाद—

निवन्द्येति मम व्याधिः, शीघ्रं भैरव्ययोगतः ।

गच्छेदानीं ममेदेन, रेवतीपूरिणीपदम् ॥ ९ ॥

लुपाकण्ड वन में रो रहा है। उसे बुला लाओ।” भगवान् की आज्ञा न कर अमर उसी समय वहाँ के लिए रवाना हो गए। वहाँ पहुँचकर सिंह अनगर को भावधान करके उनमें भगवान् का सम्देश बहा। सिंह अनगर गुरु-आज्ञा निरोधार्य करके, मुनियों के साथ मालुपाकण्ड वन से झालकोट्ट वन में भाए और गुरुजी को वन्दना करके उनके पास बैठे। उपस्थित हुए सिंह मुनि को महावीर स्वामी ने इस प्रकार आवाहन दिया ॥ ७ ॥

समीप में बैठे हुए सिंह मुनि को तसल्ली देते हुए गुरु जी बाल—

भद्र ! तू रोता क्यों है ? छद् मास में मेरी मृत्यु नहीं होगी। मैं इस पृथिवी मंडल पर साढ़े पन्द्रह वर्ष तक मौजूद रहूँगा ॥ ८ ॥

श्रीमहावीर, सिंह अनगर से कहते हैं—मेरा रोग धर्म है, रोगे का कोई कारण नहीं। अज्ञ योग सत्य को नहीं जानते। यह अफवाह मिली है। इस अफवाह को पैकाने वाला गोशाखा का बचन भी मिली है। जब कारण ही सत्य नहीं तो कार्य सत्य कैसे हो सकता है ? छद् महांने में मेरी मृत्यु नहीं होगी। इस भूमल पर मैं साढ़े पन्द्रह वर्ष पर्यन्त विचरण करूँगा। तू विचार न कर। क्या भी है—हे सिंह ! संकलि पुत्र गोशाखा के तप के तेज से मैं पराभूत नहीं हुआ हूँ और न छद् माह में मेरी मृत्यु ही होगी। अभी मैं साढ़े पन्द्रह वर्ष तक भी विचरूँगा ॥ ८ ॥

अमित रहने पर भी रोग का क्या होगा ? कहते हैं—

श्रीपथि के योग से मेरा रोग शीघ्र दूर हो जायगा। प्रसन्न होकर अभी देवती आदिका के घर जाओ ॥ ९ ॥

निवत्स्पर्यतीति—रोगस्यापि नास्ति चिरकालिकत्वम् ।  
तन्निवृत्त्युपायमपि जानाम्येव । मदर्थं तु तस्यापि नास्त्व-  
वश्यकता तथापि त्वाद्यशानामाशङ्को निवर्त्तयितुं दर्शयाम्युपायम् ।  
यदीच्छा चेद्विनिवर्त्य विपादं प्रसन्नचित्तेनेदानीमेव रेवतीगाय-  
पत्नीगृहं ब्रज । तदुक्तं—“तं गच्छद्दृष्टुं तुमं सीहा ! मंडियगाम-  
नगरं रेवतीण गाहावतिणीण गिहे”—(भग० १५; १. १०  
६८६) ॥ ९ ॥

तत्र मर्दनवर्णयित्वा तत्रप्रथमं दर्शयति—

द्वे कपोतशरीरे वै, तथा महामुपस्कृते ।

ते न ग्राह्ये यतस्तत्राधाकर्मदोषसंश्रयः ॥ १० ॥

द्वे इति—रेवतीगायापत्न्या भक्तिवशाद् द्वे कपोतशरीरे  
मर्दयामुपस्कृते ते तु नानेये, कुतः ? मर्दयं निष्पादितत्वात्तत्राधाकर्म-  
दोषः संभवति । आधाकर्मदोषविशिष्टत्वात्तद्वस्तु न ग्राह्यमिति ।  
मूलपाठस्तु—“तत्थ णं रेवतीण गाहावतिणीण ममं अट्ठाण दुवे  
कयोयसरीरा उक्खवडिया तेहिं नो अट्ठो”—(भग० १५; १, १०  
६८६) ॥ १० ॥

• द्विमानेषमित्याह—

मार्जारकृतकं पर्यु-पितं कुक्कुटमांसकम् ।

आनयेपण्या सगो, भवेद्येनामयत्तयः ॥ ११ ॥

; मार्जारकृतकमिति—यदन्यन्मार्जारकृतं पर्युपितं हस्तन-  
निष्पादितं कुक्कुटमांसकं तद्गृहे विद्यते तत्र प्रामुक्तेपगाशुद्ध-

रोग भी चिरकाशीन नहीं है। उसे दूर करने का उपाय भी मैं जानता हूँ। मुझे तो इसकी भी आवश्यकता नहीं परन्तु तुम जीसो की आशंका को दूर करने के लिए उपाय बताता हूँ। इन्द्र हो तो विषाद को दूर कर, असुख मन से इसी समय रेवती गायामती के घर जाओ। क्या भी है—हे सिंह! मैत्रिकप्राम नामक नगर में रेवती गायामती के घर जाओ ॥ ९ ॥

वह, जो अनन्तरीय है उसे पहिजे दिखाते हैं—

उसने—गायामती ने—मेरे लिए दो कपोत-शरीर पकाये हैं, वे प्राण नहीं हैं; क्योंकि उनके प्रहण करने में व्याधार्कर्म दोष है ॥ १० ॥

रेवती गायामती ने भक्ति के बश होकर मेरे लिए दो कपोत-शरीर पकाये हैं। वे छाने योग्य नहीं हैं। क्यों? इसलिए कि वे मेरे लिए पकाये हुए हैं अतः उन्हें प्रहण करने से आधार्कर्म दोष उत्पन्न होगा। तात्पर्य यह कि आधार्कर्म दोष से मुक्ति होने के कारण वह वस्तु प्राण्य नहीं है। मूछ पाठ इस प्रकार है—

साम—रेवती गायामती ने मेरे लिए दो कपोत-शरीर सम्पन्न किये हैं। उनमें हमें प्रयोग नहीं ॥ १० ॥

तो छाना क्या है सो कहते हैं—

माजोरकृतक, कल बनाया हुआ कुक्कुटमांस (क) एषणा पूर्वक से खाओ, जिससे शीघ्र ही रोग दूर हो जाय ॥ ११ ॥

पूर्वोक्त कपोत-शरीर के अनिश्चित, कल बनाया हुआ कुक्कुट-



मांसवत्फलगर्भेऽप्युक्तत्वान्, मार्जारकुम्भुकपोतशङ्खानां प्राति-  
 वद्धनस्पत्यर्थेऽपि विद्यमानत्वान् । तत्कथमिति तु प्रमाणपुरस्ता-  
 मपे दर्शयिष्यामः । दूग्धार्थका वाऽनेकार्थकाः शब्दाः श्रोत्र-  
 संशयजनकाः सन्तोऽवश्यमेव विचारणीयपथमायान्ति । एतादृश-  
 परिस्थितौ प्रसंगादिकमेव निर्णायकं भवति । यथा केनचिच्छ्रेष्ठि-  
 किंकरं प्रत्युक्तं 'सैन्धवमानय' । एतच्छ्रवणानन्तरं स संशय-  
 नश्चिन्तयति 'किं लवणमानयामि वाऽश्वम्' । प्रसङ्गोपरिस्थितौ  
 निर्णयति । यन्नेदानीं लवणप्रयोजनं प्रयाणप्रसङ्गान् । य-  
 नाश्वप्रयोजनं भोजनप्रसङ्गान् । एवमत्राप्युभयार्थकान् -  
 शब्दान् श्रुत्वा श्रोतारो गच्छन्त्येव चिन्तापथम् । अत्र ये सम्यग्-  
 दृष्टयः शास्त्रज्ञास्ते तु प्रसङ्गानुसारेण सम्यग्दृष्टितया सम्यगर्थमे-  
 निश्चिन्वन्ति । ये तु मिथ्यादृष्टयस्ते विपरीतमेवार्थं गृह्णीषु-  
 तेषां तत्त्वभावत्वान् । यदुक्तं नन्दीसूत्रे—“सम्मदिद्विस्तस सम्-  
 सुयं मिच्छदिद्विस्तस मिच्छसुयं” ॥ १३ ॥

विपरीतदृष्टयः कथं गृह्णन्तीत्याह—

विपर्यस्तधियः केचिन्मत्वा मांसार्थकार्थं च तान् ।  
 शास्त्रस्यापि सदोपत्वं, रूपापयन्ति यथाकथम् ॥१४॥

विपर्यस्तधिय इति—यथा दृष्टिस्तथा सृष्टिः । सम्यग्-  
 ज्ञानदर्शनावाभितान्तःकरणाः केचिज्जनाः प्रकरणारिकमनरेक्ष्य-  
 हृदमर्थं विहायोपयुक्तानां पणमां शब्दानां प्राणिकजन्यमांसार्थकान्

निर्धार्यं यथाकथंश्चिन् शाम्भस्य-भगवत्यादिमूत्रस्यापि  
शब्दविशिष्टत्वान्-सदोपत्यं-दुष्टत्वं कथावयन्नि-प्रथयन्नि-

वस्तुतस्तु स्वयं दुष्ट. न्यदोपानेन परंपारोपपत्त्याह—

मिथ्याबुद्धेर्विलासोऽयं, न सदसत्परीक्षणम्  
प्राण्यर्थो घटते नैव, प्रसंगेऽत्र कथञ्चन ॥

मिथ्याबुद्धेरिति—अयं प्रलापः शाम्भस्य दुष्टत्वक्या  
न सत्यासत्यपरीक्षात्मकः, किन्त्वयं मिथ्याबुद्धे-रिपरीत  
विलासः परिणामः । मिथ्यामतिः सापेक्षवचनानां पर्या  
पूर्वकं नार्थं चिन्तयति । यदि सदसत्परीक्षा स्यात्तदा सं  
विहायासंगतमर्थं न स्वांकुर्यान् । विवेकयुद्धिमांस्तु प्रकर  
चिन्तयेत् । कः प्रसंगः, को दाता, को गृहीता, कस्मै  
कीदृशं तस्य जीवनमिति सर्वमनुसंधायैवार्थं कुर्यान् । स  
दृष्ट्या वा शास्त्रदृष्ट्या चिन्त्यमानेऽस्मिन्प्रसंगे कथंचिदपि मा  
दिशब्दानां प्राण्यर्थो-प्राणिमांसाद्यर्थो वा नैव घटते-  
इत्यर्थः ॥ १५ ॥

कथं न घटत इत्याह—

नरकायुष्यहेतुत्वं, मांसाहारस्य दर्शितम् ।  
स्थानांगादिषु सूत्रेषु, स्पष्टं श्रीमज्जिनेस्वरैः ॥ १६ ॥

नरकायुष्यहेतुत्वं, मांसाहारस्य दर्शितम् ।  
गती एव नरकायुष्यहेतुत्वं, मांसाहारस्य दर्शितम् ।  
श्रीमज्जिनेस्वरैः मुनी  
देवगतिरथ । तत्रापि

आदि निमित्त काहे जैसे जैसे भगवती आदि शास्त्रों को भी मात-प्रति-पादक कह कर दूषित करते हैं ॥ १४ ॥

वास्तव में वे स्वयं दोषी हैं और अपने ही दोषों का दूसरों पर आरोपण करते हैं यही दिसजाले हैं—

१ यह प्रलाप विपरीत बुद्धि का फल है, सत् असत् की परीक्षा का नहीं। क्योंकि इस प्रकरण में प्राणी-अर्थ किसी भी प्रकार नहीं घट सकता ॥ १५ ॥

२ साध को दूषित करने रूप यह प्रलाप अपनी दुष्टता को प्रकट करता है। सत्य असत्य की परीक्षा से इसका कुछ सम्बन्ध नहीं है। यह तो मिथ्या बुद्धि का ही परिणाम है। मिथ्यादि, सापेक्ष वचनों के अर्थ को विचार पूर्वक चिन्तन नहीं करता। यदि सत्य-असत्य की परीक्षा करे तो सुगत अर्थ को छोड़ कर असंगत अर्थ को क्यों स्वीकार करे? विवेक-बुद्धि वाले को तो प्रकरण आदि का विचार करना चाहिए। कौन देता है? कौन लेता है? किस लिए लेता है? लेने वाले का जीवन कैसा है? इन सब बातों पर नज़र रखते हुए ही अर्थ करना चाहिए। सम्बन्धित से या साध दृष्टि से विचार करने पर इस प्रसंग में माजोर भावि शब्दों का प्राणी या प्राणी का मात आदि अर्थ नहीं घटता है ॥ १५ ॥

न घटने का कारण—

जिनेश्वर भगवान् ने स्थानांग आदि सूत्रों में मांसाहार को नरकायुष्य का कारण स्पष्ट रूप से बताया है ॥ १६ ॥

प्रासुक-पूषणोप भोजन करने वाले मुनिवों को दो ही गतिर्वा प्राप्त हो सकती है—मोक्ष अथवा पैमानिक देवगति। भगवान् महावीर स्वामी को तो मोक्ष ही प्राप्त हुआ क्योंकि वे तीर्थंकर थे। लेकिन मांसा-

निर्घोर्य यथाकथंचित् शास्त्रस्य-भगवत्त्यादिसूत्रस्यापि  
शब्दविशिष्टत्वात्-सदोपत्त्वं-दुष्टत्वं ख्यापयन्ति-प्रथयन्ति ॥ १३ ॥

वस्तुतस्तु स्वयं दुष्टः स्वदोषानिव परेप्यारोपयतीत्याह—

मिथ्याबुद्धेर्विलासोऽयं, न सदसत्परीक्षणम् ।

प्राण्यर्थो घटते नैव, प्रसंगेऽत्र कथञ्चन ॥ १४ ॥

मिथ्याबुद्धेरिति—अयं प्रलापः शास्त्रस्य ८

न सत्यासत्यपरीक्षात्मकः, किन्त्वयं मिथ्याबुद्धे-र्विलासः परिणामः । मिथ्यामतिः सापेक्षवचनानां पर्यायि  
पूर्वकं नार्थं चिन्तयति । यदि सदसत्परीक्षा स्यात्तदा सं  
विहायासंगतमर्थं न स्वीकुर्यात् । विवेकबुद्धिमांस्तु प्रकल्प  
चिन्तयेत् । कः प्रसंगः, को दाता, को गृहीता, कस्मै  
कीदृशं तस्य जीवनमिति सर्वमनुसंधायैवार्थं कुर्यात् । सम्भ  
दृष्ट्या वा शास्त्रदृष्ट्या चिन्त्यमानेऽस्मिन्प्रसंगे कथंचिदपि  
दिशब्दानां प्राण्यर्थो-प्राणिमांसाद्यर्थो वा नैव  
इत्यर्थः ॥ १५ ॥

कथं न घटते इत्याह—

नरकायुष्यहेतुत्वं, मांसाहारस्य दर्शितम् ।

स्थानांगादिषु सूत्रेषु, स्पष्टं श्रीमज्जिनेश्वरेः ॥ १६ ॥

नरकायुष्यहेतुत्वमिति—प्रायस्कैपगीयभोजिनां मुनीनां  
गती एव भवतः—मोक्षो वैमानिकदेवगतिरिव । तथापि भी

आदि निर्मित करके देवे तैले भगवती आदि शास्त्रों को भी मांस-प्रति-  
पादक कह कर वृथित करते हैं ॥ १४ ॥

वास्तव में वे स्वयं दोषी हैं और अपने ही दोषों का दूसरों पर आरोपण  
करते हैं वही दिखलते हैं—

यह प्रलाप विपरीत बुद्धि का फल है, सन् असन् की  
परीक्षा का नहीं। क्योंकि इस प्रकरण में प्राणो-अर्थ किसी भी  
प्रकार नहीं पट सकता ॥ १५ ॥

शास्त्र को वृथित करने रूप यह प्रलाप अपनी दुष्टता को प्रकट  
करता है। सत्य-असत्य की परीक्षा से इसका कुछ सम्बन्ध नहीं है।  
यह तो मिथ्या बुद्धि का ही परिणाम है। मिथ्यादृष्टि, सापेक्ष वचनों  
के अर्थ को विचार पूर्वक चिन्तन नहीं करता। यदि सत्य-असत्य की परीक्षा  
करे तो सुगत अर्थ को छोड़ कर असंगत अर्थ को क्यों स्वीकार करे ?  
विबेक-बुद्धि वाले को तो प्रकरण आदि का विचार करना चाहिए। कौन  
देता है ? कौन लेता है ? किस लिये लेता है ? लेने वाले का जीवन  
किसा है ? इन सब बातों पर नज़र रखते हुए ही अर्थ करना चाहिए।  
सम्बन्ध से या शास्त्र दृष्टि से विचार करने पर इस प्रसंग में मांसाहार आदि  
घातों का प्राणी या प्राणी का मांस आदि अर्थ नहीं पड़ता है ॥ १५ ॥

न पटने का कारण—

जितेश्वर भगवान् ने स्थानांग आदि सूत्रों में मांसाहार को  
नरकयुक्त का कारण स्पष्ट रूप से बताया है ॥ १६ ॥

प्रासुक-पुष्पाद्य भोजन करने वाले मुनिषों को दो ही गतिर्था प्राप्त  
हो सकती है—मोक्ष अथवा वैश्वानिक देवगति। भगवान् महावीर  
स्वामी को तो मोक्ष ही प्राप्त हुआ क्योंकि वे तीर्थंकर थे। लेकिन मांसा-

मन्महावीरस्य तु मोक्षगमनमेव । अयं मांसाहारेण तु  
सम्भवति । तदुक्तम् स्थानांगसूत्रचतुर्यस्थाने “वर्षे  
जीवा णेरइयत्ताए कम्मं पकरंति तं जहा-महारंभआए,  
ग्गहयाए, पंचिदियवहेणं, कुणिमाहारेणं” । आदि  
भगवत्पौषपातिकसूत्रयोर्महणमर्याद्भगवत्पट्टमशतकस्य  
तथौषपातिकसूत्रे दशनाधिकारेऽप्येवमेवोक्तम् । नैतद्येन  
क्तमपितु श्रीमञ्जिनेश्वरैः । नात्र काचिच्छङ्का अपितु  
मित्यर्थः । एवं च मांसाहारस्य नरकायुष्यहेतुत्वं वैरुक्तं  
एवोत्तमपुरुषाः किं मांसाहारं कुर्युः ? नैव कुर्युरित्यर्थः ॥ १६ ॥

दिञ्च—

मांसं निष्पद्यते यत्र, स्थाने तत्र मुनीश्वरैः ।

अन्नाद्यर्थं न गन्तव्यं, निशोथे तन्निषिध्यते ॥ १७ ॥

मांसमिति—मांसाहारनिष्पत्तिस्थानेऽन्यदशनादिकं  
मुनिनान गन्तव्यमिति निशीथसूत्रे नवमोदेशके निषेधः कृतः  
तथाहि—“जे भिक्खु रण्णो खत्तियाणं जाव भिसित्ताणं मंसक्ख  
याण वा मच्छस्सायाण वा छवियक्खसायाण वा वदिया  
वा असणं पाणं; त्वाइमं, साइमं जाव साइज्जइ” ।  
निष्पत्तिस्थानस्थाभि दुष्टत्वं तद्वस्तुदुष्टत्वस्वभावेनोक्तं, तर्हि  
नस्तु का कथा ? अनेन मांसस्याशुद्धत्वं दुष्टत्वं च  
दितम् ॥ १७ ॥

हार से नरक गति होती है। स्थानोग मूत्र के चौथे स्थान में क्या है—  
 शीतल चार स्थानों ( करणों ) से नरकानु कर्म जायते हैं—महाभारत  
 से, महा परिशद से, पंचेन्द्रिय शीतल के षड से भीर कुण्डिम—मांस को  
 आहार से। इत्येक में जो भादि पद दिया है उससे भगवती भीर भीष-  
 पातिक मूत्र का प्रदण करना चाहिए। अर्थात् भगवती शतक भाठवें के  
 शीतल उद्देशक में तथा भीषपातिक मूत्र के देना अधिकार में भी यही  
 बात कही गई है। यह कथन किसी ऐसे-वैसे का नहीं किन्तु भगवान्  
 जिनेन्द्र का कथन है। भगवान् का यह कथन एकदम स्पष्ट है—इसमें  
 क्या भी संदेह की गुंजाइश नहीं है। इस प्रकार जिन्होंने मांसाहार  
 को नरकानु का कारण बताया है क्या यही उत्तम पुरुष मांसाहार करेंगे ?  
 क्यापि नहीं कर सकते ॥ १६ ॥

भीर भी—

जिस जगह मांस पकाया जाता हो वहाँ मुनीस्वरों को श्रद्धा  
 आदि के लिए भी न जाना चाहिए। निशीथ सूत्र में ऐसा  
 निषेध किया गया है ॥ १७ ॥

जिस स्थान पर मांस पकाया जाता हो वहाँ मुनि को दूसरा मद्य  
 आदि आहार खाने के लिए भी नहीं जाना चाहिए, ऐसा निशीथ सूत्र  
 में उद्देशक में निषेध किया है। यह निषेध इस प्रकार है—जो  
 मद्य मांस, मठली, भुटे हाँके भादि खाने वाले राजा या शत्रिय का  
 अन्न पान, खाद्य, स्त्राय, ( आहार होता है उसको भीमासी प्रायश्चित्त  
 है ) जिस पदार्थ के दोष के कारण, उसके निष्पत्ति स्थान तक  
 को दूषित माना गया है, उस पदार्थ के दोष का तो कटना ही क्या !  
 इस उदाहरण से मांस की अशुद्धता और दुष्टता का प्रतिपादन किया  
 गया है ॥ १७ ॥

पुनरथ—

उत्तराध्यायमूत्रेषु दर्शितं मांसभोजिनः ।

फलं दुर्गतिवन्धादि, दुःखदोर्भाग्यदायकम् ॥ १ ॥

उत्तराध्यायमूत्रे इति—द्वितीयमूलसूत्रे

त्वनेऋस्थलेषु मांसाहारकर्तुर्दुःखदारिद्र्यजनकं दुर्गतिवन्धादि  
भवतीति तत्तत्स्थले दर्शितम् । तथाहि—५

गायायाम्—

“द्विसे बाले मुसावाहं, माइल्ले पिसुणे सडे ।

भुञ्जमाणे सुरं मंसं, सेयमेयं ति मच्च ॥ ५ । ६ ॥

सुरामांसभोजिनो धाजमरणं भवति न तु पंडितमरणं  
पालमरणाच्च दुर्गतिरेवेति दुर्गतिफलकत्वं मांसाहारस्य दर्शितम्  
एवं सप्तमाध्ययने—

“इतिविसयगिद्धे य, महारम्भपरिग्गहे ।

भुञ्जमाणे सुरं मंसं, परिदुं परदमे ॥ ७ । ६ ॥

अयककरभोई य, तुंदिले चियलोदिए ।

आउय नरण कसं, अहाएत व एलए ॥ ७ । ७ ॥”

अथापि सुरामांसभोजिनो नरकायुष्यबंधकत्वं विस्तारितम्  
एवमेवैकोनविंशतितमेऽध्ययने—

“तुइ तियाई मंठाई, सडाइ सोल्लगाणि य ।

साहिओ विसमसाई, अग्गिबएणाईंउण्णसो ॥ ११ ॥



## रेवती-दान-समालोचना

निर मे—

उत्तराध्ययन सूत्र में भी मांसभोजी को दुःख और दुर्भाग्य देने वाला दुर्गति का बन्ध आदि फल दियाया है ॥ १८ ॥  
दूसरे मूळ सूत्र भीमदुलशाध्ययन में, अनेक स्थलों पर मांसाहार करने वाले को दुःख और दरिद्रताजनक दुर्गति का बन्ध आदि फल दिलाया है, ऐसा कहा गया है ।

प्राचीने अध्ययन की मयवी गाथा में लिखा है—

द्विसक, बाल, मृषागदी, मायागी, पृगलखार, आर शट  
मनुष्य मदिरा और मांस का भोगना भयस्कर है, एसा मानना  
है । ( ५-६ )

मदिरा-मांस-भोजी का बालमरण होता है—पण्डित मरण नहीं होता और बालमरण से दुर्गति ही होती है, अतएव मांसाहार को दुर्गति का कारण नहीं बताया है । एसाके अध्ययन में कहा है—

शरी आदि विषयों में आसक्त, महा आरभी, महा परिपही,  
दूसरों को पीडा पहुँचाने वाला, मदिरा और मांस का सेवन  
करता हुआ दुःखी है । ( ७-६ )

यहाँ भी मदिरा-मांस-भोजी को बरधनु का बन्ध होना प्रकट किया है । उक्तोक्तमें अध्ययन में कहा है—

“तुम्हें मांस बहुत भिय था ऐसा कह कर परमाधामी ने  
मुझे मेरे ही शरीर के मांस के टुकड़े का सोल्ला बना कर  
अनेक बार खिलाया” । ( ७० )

तुह पिया सुरा सीहू, मेरओ य महूणिय य ।

पाइओ मि जलेंतीओ वसाओ सहिराणिय य ॥२६॥ ७॥

सृगापुत्रः स्वमातरं नरकदुःखं वर्णयति । तद्दुःखत्व

संवाचरितमदिरापानमांसमक्षणत्वप्रयोज्यत्वं दर्शयति ।

पूर्वैर्वचनैर्मदिरापानमांसमक्षणस्यैकान्तदुष्टत्वं प्रतिपाद्यते ॥ १८ ॥

किंच—

पिशितं भुञ्जमानानां, मनुजानामनार्यता ।

सूत्रे सूत्रकृतांगे त्वार्द्रकुमारेण भाषिता ॥ १६ ॥

पिशितमिति—सूयगडाभिधे द्वितीयेऽङ्गसूत्रे ।

शौद्धार्द्रकुमारयोः संवादे मांसमक्षणस्य कर्मबन्धाहेतुत्वं

शौद्धान्प्रति वक्ष्यार्द्रकुमारः—

“तं मुञ्चमाणा पिशितं पभूतं, यो उवलिप्यामो वयं रएणं ।

इच्छेवमाहंसु अणुञ्चधम्मा, अणारिया चालरसेसु गिदा ॥

जे यावि भुंजति तहप्पगार, सेवान्ति ते पावमजाणमाणा ।

मएणं न एयं कुमला करोति, वायांवि एसा बुद्धया उमिच्छा ॥२६॥”

पिशिताशिनोऽनार्या बाला रसगृह्णा अनाचैधर्माण इति ।

पणचतुष्टयेन मांसाशनस्यैकान्तनिन्द्यत्वं दर्शितम् ।

पास्तु तदिच्छामपि न कुर्वन्ति । मांसस्य निर्दोषत्वप्रतिपादनस्य

वार्यपि मिथ्यैवेत्येतत्सर्वं वर्णनं मांसाहारनिषेधायात्मस्ति ।

ह्रीकाकारेण प्रकृतविषये शास्त्रान्तरीयप्रमाणान्वय्युपन्यस्तानि वर्ण-

चेमानि—



“मां स भक्षयिताऽमुत्र यस्य मांसनिहाम्यहम् ।  
एतन्मांसम्य मासत्वं, प्रयदानि मनीषिणः ॥ १ ॥

योऽति यस्य च तन्मांसमुभयोः पश्यतान्तरम् ।  
एकस्य क्षाणिका वृत्तिरन्यः प्राणैर्वियुज्यते ॥ २ ॥

भुत्वा दुःखरम्परामातिघृणा, मांसाशिनां दुर्गति,  
ये कुर्वन्ति शुभोदयेन विरति, मासादनस्यादरात् ।  
सदीर्घायुरद्विपितं गदरुवा, संभाव्य यास्यन्ति ते,  
मत्स्येषु द्रष्टभोगधर्ममतिषु, स्वर्गोपवर्गेषु च ॥ ३ ॥

एवमनेकप्रमाणसङ्घातेऽपि विस्तरभयाद् दिद्मात्रमत्र दर्शितम् ॥ १५ ॥

न चाचारद्वितीयश्चतुर्थश्च पाठाः सन्ति कश्चि  
प्रमाणसङ्घातप्रमाणं किं न संश्लेष्यते इत्यत आह—

न चाचारद्वितीयस्थाः, पाठा मांसार्थसाधकाः ।  
यतश्चिन्त्यं तदस्तित्वं विरोधादागमान्तरेः ॥ २० ॥

नेति—आचारस्याचारान्गभिधमूरस्य द्वितीयभूतरूप  
आचारद्वितीयः । आचारस्य द्वौ भूतरूपश्चो स्तरस्य यो द्वितीय-  
भूतरूप इत्यर्थः । मत्र तिष्ठन्तीति कस्याः । पाठा आचारस्य  
“से निम्नं वा० त्राव समाखे से तं पुण्य आखेता मसात्वं च

“विसका मांस मैं इस लोक में खाता हूँ. मां (मुच्छको)  
( बह ) परलोक में खायगा । यही मांस ही मांसता है—  
तु इसीलिए उसे ‘मांस’ कहते हैं ।

“दो विसके मांस को भक्षण करता है, उनके अन्तर  
देखा—एक की तो क्षणिक तृप्ति होती है और दूसरा  
मांसों से मुक्त होता है” ॥ २ ॥

“मांस-भक्षियों की अत्यन्त घृणास्पद और दुःख देने  
वाले दुर्गाते को मुन कर जो पुरुष पुण्योदय में मांस-भक्षण  
ब्रह्म त्याग करते हैं, वे दीर्घायु पाते हैं, नरिण होते हैं, सुख  
प्राप्त करते हैं और धर्म को प्राप्त करने वाले मनुष्यों में तथा  
स्वर्ग और मोक्ष में जाते हैं ॥३॥

इस प्रकार के अनेक प्रमाण मौजूद होने पर भी विस्तार के भय से  
‘दिग्दर्शन’ भाग कराया गया है ॥ १९ ॥

आचारान्त सूत्र के द्वितीय धृतस्कन्ध आदि में मांसार्थ के सावक पाठ  
हैं । आप सावक प्रमाणों की तरह सावक प्रमाणों की क्यों नहीं स्वी-  
कृत ? इत्यादि समाधान—

“आचारान्त के द्वितीय धृतस्कन्ध का पाठ मांसार्थ को सिद्ध  
करता, क्योंकि आगमान्तर के साथ विरोध होने से उन  
शब्दों का अस्तित्व विचारणीय है ॥ २० ॥

आचारान्त के द्वितीय धृतस्कन्ध को वहाँ ‘आचारद्वितीय’ कहा है ।  
‘के दो धृतस्कन्ध हैं । उनमें से द्वितीय धृतस्कन्ध “ते भिक्षु  
आव समामे से च पुन आनेय्या मंसार्थं वा मज्जार्थं वा” इत्यादि

मच्छाश्यं वा.....” इत्यादयः पिरडेपणाभ्ययनउत्का न मांसं  
साधकत्वेनोपादानुं शक्यन्ते कुतो नेत्याह—यत् इति यमा  
एतन् आगमान्तरैः—मांसादिनिषेधकैः स्थानाद्गमरतीनिरा  
यागमपाठैः । विरोधान्—वाधितत्वात् । ननु द्वितीयभुतस्कन्धस्य  
रागमान्तरपाठानामेव वाधितत्वमस्तु विनिगमनाविरहादिति चेन्न  
आचाराद्गद्वितीयभुतस्कन्धस्य प्रथमभुतस्कन्धात्परिरेकद्वय  
निर्युक्तकारेण बहिरङ्गत्वप्रतिपादानात् । बहिरङ्गविधितोऽन्त  
विधेर्यलीयस्त्वान्मांसादिपाठानां वाधितत्वे विनिगमनास्य  
तदस्तित्वम्—तेषां द्वितीयभुतस्कन्धगतपिरडेपणाभ्ययनसंस्कृष्टान्  
मस्तित्वं सद्भारः । चिन्त्यम्—चिन्तनीयम् विचारणीयमस्तीति  
बहिरङ्गानां तत्पाठानामस्तित्वेऽपि सन्देहास्पदे ते पाठाः स्वयमस्ति  
रागमन्तः कथं मांसार्थसाधकाः स्युः ? नैव स्युस्त्वर्थः ॥ २० ॥

आमसादिना प्रदरकं प्रहरणकारणविरोधं दर्शयति—

द्रव्यशुद्धेन दानेन, देवायुर्दमेतया ।  
जिननाम च मांसार्थ—करणेऽदो न सम्भवेत् ॥२१॥

द्रव्यशुद्धेनेति—रेवतीगाथाकन्या सिद्धान्ताराय यद्द्रव्य-  
द्वयं दानं दत्तं तस्य प्रभारेण तथा तदानीमेव देवग वायुर्दं तोर्ष-  
द्वानाम् इति च वदन्निन्युष्टं तत्रैव प्रहरणे स्वानाद्गमूत्रस्य नाने  
स्वाने च । तथाहि—“तद्वर्णं तोष देवकीय गाक्षामविजो र केरं  
एवमुद्धेय वायुगमुद्धेयं तवस्मिन्मुद्धेयं विहरणमुद्धेयं परिहारण-  
मुद्धेयं दानेयं गोर्ष अगमादे परिहाविर समाणि देवायुर् निवडे।”



भग० १५; १, २० ६८७ ममगुप्तं जं भगवतो महायज्ञे  
 कित्थंमि जगदि जोगेदि निजगरगुप्तमगोत्ते कम्मे निज  
 सेण्णिण्णं, सुधामेणं, उराउणा, वोदिनेणं अरुगारेणं, इदम  
 संन्येणं, सयणेणं, सुनमाए, रेवताए । म्था० ९, मू० ११  
 पृ० ४५५ ।

रेवत्या दत्तं यदि प्राणिमासं स्यात्तदोक्तगृही न कर्तव्यं  
 याताम् । मांसस्याशुद्धद्रव्यत्वेन दुष्टत्वस्य मरयेव निदर्शनी  
 किञ्च तार्थकुरनामदेवायुष्यबंधोऽपि न संभवेत् । कुरु  
 हारस्य नरकायुष्यहेतुत्वेन स्थानाद्वाही प्रतिपादितत्वात् । तथा  
 कपोतादिशब्दानां प्राणिमांसार्थभस्त्वे स्वीकृतं द्रव्यशुद्धित्वोक्तं  
 नामकमेदेवायुष्यबंधश्चेत्येतन्न भंगच्छेत् ॥ २१ ॥

मासायै 'कडए' शब्दश्चानन्वयापत्ति म्वादिम्याह—

कडए इति शब्दस्य, मांसे नान्वययोग्यता ।

न हि निष्पाद्यते मांसं, मार्जारैण कथंचन ॥२२॥

द्धिन्नं वा भक्षितं तस्य, लक्ष्यार्थः क्रियते तदा ।

वाक्यार्थासंगतिः स्पष्टा, दातुं योग्यं न तद्भवेत् ॥२३॥

कडए इति—'मज्जारकडए कुक्कुडमांसए' इति वाक्ये

मार्जारैण कृतमिति तृतीयातत्पुरुषे कृते कृतमित्यस्य निष्पादित्वनि

त्यर्थे मार्जारनिष्पादितमित्यर्थः स्यात् । स च न संभवति ।

हि शस्त्रादिना मार्जारः कुक्कुडमांसं निष्पादयितुं शक्नोति ।

तत्सकारो शस्त्रादीनामभावात् । दंतदंष्ट्रादिकमेव शस्त्रं तेन

कुक्कुटं धिनत्ति भक्षयति वा मार्जार इत्युच्यते तदा



इत्यामोष्य बौध्वा मूकपाद इत्य प्रकार है—समव्यस्य भ० महाभाष्यस्य  
 तथोसि व्यसिदि जावेदि तिथगणनाप्रभाया अमे निष्कृतिने सेलिप्ल

.....रेवतीदर्पं सू० ६९१ सू० ४५५ ।

रेवती के द्वारा दिया हुआ पदार्थ यदि प्राणी का मांस होता तो वह पाद संगत नहीं होता क्योंकि मांस अमृद इत्य है और उसको मृदुता अभी बतलाई जा चुकी है । दूसरा बात यह है कि यदि पत्नी के प्रायो-मांस दिया होगा तो देवायु का बन्ध और सांभ्रतनाम-योग्य कर्म का बन्ध भी न होता, क्योंकि रथानाग आदि मृत्यो में मांसाहार को भक्षयु का कारण बताया है । तात्पर्य यह है कि करोत आदि

के प्रायो-मांस अर्थ का प्रतिपादक माना जाय तो इत्यमृदि और देवायु का बन्ध, यह दोनों बातें बहो बन सकनी ॥ २१ ॥

मांस अर्थ जानन पर 'कडप' शब्द का अनन्वय—

कडप शब्द का 'मांस' के साथ संबंध नहीं पडता, क्योंकि के द्वारा मांस का निष्पादन नहीं किया जाता है । यदि के द्वारा देता या खाया हुआ, ऐसा 'कडप' शब्द का अर्थ लिया जाय तो वाक्यार्थ की असंगति स्पष्ट हो है । पदार्थ दान देने योग्य नहीं हो सकता ॥ २२-२३ ॥

'मकारकड कुक्कुड मसर' इस वाक्य में 'माकारेण कृतम् (माकार द्वारा किया हुआ) इस प्रकार मृत्नीया संपुरण समाप्त करने पर माकार-का अर्थ माकार द्वारा निष्पादन, होता है । यह अर्थ अक्षभव क्योंकि माकार शब्द आदि से कुक्कुड-मांस का निष्पादन नहीं कर

। माकार के पास शब्द होते ही नहीं हैं । यदि कोई यह कहे सौत और काड़े आदि ही माकार के शब्द हैं और जहाँ से वह कुक्कुड मांस को निष्पादन करता एवं भक्षण करता है । सो यह अक्षगिक और वे सिर पर का है । क्योंकि ऐसा बल्य तो दान के योग्य हो

स्यम् । तद्वस्तु दानयोग्यमेव न भवेत् । तथा च वाक्योक्तं  
नापत्या वाक्यार्थसंगतिः स्पष्टैव । एकपत्तिदूरोकरसंज्ञराजसि  
समागता तथा च व्याघ्रनदीन्यायप्रसंगः ॥२२॥२३॥

कवनसानक्षस्यमित्याह—

मार्जारोच्छिष्टमन्नाद्यं, गस्यतेऽद्यापि दूषितम् ।

शिष्टाः स्पृशन्ति नैवैतद्, भक्षणस्य तु का कथा २४॥

मार्जारोच्छिष्टमिति—वर्तमानकालेऽपि यदन्नदुग्धारिणं  
स्वाद्यवस्तुनि मार्जारेण मुखं निविष्टं तद्वस्तु दूषितमन्नाद्यं नीचवर्णं  
रपि मन्यते । शिष्टजनास्तु तत्पर्शमपि त्यजन्ति । भक्षणं तु  
सुतरामेव त्यजन्ति ॥२४॥

शरीरशब्दप्रयोगोऽपि मांसार्थवाचक इत्याह—

पक्षाद्यङ्गसमष्टिः स्याच्छरीरं भुज्यते न तत् ।

प्रयोगोऽत्र शरीरस्य, मांसार्थवाचकस्ततः ॥२५॥

पक्षाद्यङ्गसमष्टिरिति—‘दुवे कवोयसरीरा’ इत्यत्र शरीर-

शब्देन यदि मांसमेवाभिमतं स्यात्तदा ‘कवोयसरीरा’ इत्येव प्रयुज्येते।  
परं च तत्रापि ‘दुवे’ शब्दो बाधितः स्यात्तन्मांसे द्वित्वासंभवात्।  
न च द्वित्वं कपोतेऽप्येति तद्द्वारा तन्मांसेऽन्वय इति वाच्यम्।  
‘दुवे’ इत्यस्य समस्तत्वेन शरीर एवान्वयो घटते न तु कपोते।  
किं च शरीरशब्दस्य मांसार्थकत्वं न संभवत्येव । मांसं तु शरीर-



गतमेकं वस्तु तद्विज्ञानां रुधिगदोनामपि शरीरे ह्ये  
 शान् । शरीरश्चावयवो मांसं तु तदवयवः, अत्रापि  
 ज्ञेकावयवसमष्टिरुपत्वात्तदाह पक्षाद्येति पक्षाः पिच्छा  
 आदिशब्देन चरणचञ्चवादयस्तेषामंगानां समष्टिरेव ह्ये  
 पिच्छादिमहितं पक्षिशरीरं न क्वापि केनचिदप्युपनि  
 भुज्यते वा मांसमात्रमेव भुज्यते न तु पिच्छादिकम् । तत्र  
 शरीरशब्दस्य द्विशब्दस्य च प्रयोग एवात्र मांसार्थेकारण  
 मिद्वयनि न तु तसाधकः । तत्रयोगस्य सिद्धान्तो कथं साधक  
 मित्यपे द्शोपिष्यामः ॥ २५ ॥

तमावाहमाया. प्रकृतपरीक्षा मूलम्—

प्रकृतिशिन्त्यते गुत्रैरादायौ पथरोगयोः

अन्यथा हानतास्थाने, वृद्धी रोगस्य जायते ॥२६॥

प्रकृतिरिति—गुत्रैर्वैद्यैर्गती रोगश्चिच्छिन्त्यते । रोगस्य च

प्रकृति, कः समय, पुरुषस्य कोहरामानरणं, वा प्रकृतिनि  
 निरीक्षणानन्तरं कोहराप्रकृतिश्चोपयस्य मेवनमारोग्यतन्त्रं  
 चोदिति मन्व ह् पयोसोद्य नैवम्यं रसाति गुत्रैरामनसा रोगस्य  
 हाननोक्ति । अन्यथा—कृति विज्ञानं विना यतोपरं रोगो  
 तस्य रोगदानिभ्यु र्हे निवृत्ति व-पुत्र दानिन्त्याने नृद्विद्वे  
 श्वागिन मानान्वनियनः । अत्र पक्षास्योपनिषत्तद्वि वति  
 ना-पुनरु-हे । तत्रैवमावनिविधिभ्यवा वृद्धीरुपयाने दुषां १९  
 ॥ २६ ॥



ननु मांसमत्र रोगप्रकृत्यनुकूलं किं न स्यादित्याह—

मांसस्योष्णस्वभावत्वात्तस्मात्पित्तप्रकोपनम् ।

वर्धसि लोडिताधिक्यं, तेन स्यान्न तर्दापधम् ॥२७॥

मांसस्येति — शीतजन्यरोगाणामुष्णस्वभावोपधं . रोगस्य

भवेन्न तु शीतस्वभावोपधम् । एवमुष्णताजन्यरोगाणां शीतस्वभावोपधं शान्तिजनकं न तूष्णस्वभावोपधम् । तत्तु प्रत्युत रोगवर्धकमेव भवेदिति प्राकृतजनोऽपि जानाति । वैद्यकराब्दसिन्धास्वभावात् ७०१ पृष्ठे मत्स्यशब्दप्रसंगे ७३९ पृष्ठे च मांसशब्दप्रसंगे मत्स्यमांसस्य साधारणमांसस्य च रक्तपित्तजनकत्वेनोष्णस्वभावोपधं दर्शितम् । तथा चोष्णरोगाणां वर्धकमेव मांसं भवति तु रामकमिति सिद्धम् । श्रीमन्महावीरस्वामिशरीरे पित्तज्वरलोडिपतनदाहानामुष्णव्याधिरूपत्वाद्दुष्णस्वभावमांसेन तेषां वृद्धिः स्यादिति निर्णेतुं शक्यत एव, तेनेति पित्तप्रकोपेन लोडिताधिक्येन च मांसमोपधं कथमपि भवितुं नार्हति । ततोऽस्मिन्प्रसङ्गे कपोतादिशब्दानां मांसार्थकत्वकरणे प्रसङ्गासंगतिर्ना स्यादिति ॥२७॥

वृत्तिकारस्य श्रीमदभवदेवसुरेश्वर कृष्णप्रणय इति दक्षयंत—

इत्थं सत्यु प्रमाणेषु, मांसार्थबाधकेष्वपि ।

वृत्तिकारेण तत्पत्तः, किमर्थं नैव स्वखिडतः ॥२८॥

इत्यमिति:— इत्थममुना प्रकारेणोक्तप्रकारेणेत्यर्थः । मांसार्थेति—

कपोतादिशब्दानां मांसार्थं तात्पर्यं नास्तीति मांसार्थनिषेधबाधकप्रमाणाणि दर्शितानि तेषु प्रमाणेषु विद्यमानेषु व्याख्याकार

मांस, रोग की प्रकृति के अनुरूप क्यों नहीं है ?

मांस का स्वभाव उष्ण है । उससे पित्त का प्रकोप होता है, जल में रक्त गिरने की अधिकता होती है, अतएव मांस उस रोग की दवा नहीं हो सकता ॥ २७ ॥

शीत-द्रव्य रोगों की दवाई उष्ण स्वभाव वाली होती है, शीत स्वभाव वाली नहीं । इसी प्रकार गर्मी से जो रोग उत्पन्न हुआ हो उसके द्रव्य शीत स्वभाव वाली औषधि शान्ति जनक हो सकती है, गर्म स्वभाव वाली नहीं । गर्म स्वभाव वाली दवा तो उष्ण रोग बढ़ाने वाली होती है । वैद्यक शब्द सिन्धु कोष पृ० ७०३ में मत्स्य शब्द में और पृष्ठ २१९ में मांस शब्द के प्रसंग में मत्स्यमांस और साधारण मांस रक्त-रस जनक होने से उष्ण स्वभाव वाला बताया है इससे यह बात सिद्ध कि मांस उष्ण रोगों का कर्षक है, नाशक नहीं । भगवान् महावीर शामी के शरीर में पित्तवृद्ध, रक्तपात और हाड से सब उष्ण स्वभाव वाले रोग थे, वे उष्ण स्वभाव वाले मांस से घटते या उठते बढ़ते ? सख्य निर्णय सहज ही हो सकता है । अतः विष के प्रकृषित होने या मूत्र की अधिकता होने से मांस यहाँ किसी भी प्रकार औषध नहीं हो सकता । इस कारण इस रोग के प्रसंग में कुरोत आदि पशुओं का मांस भर्ष करने में प्रकरणासुंगति होव भाता है ॥ २० ॥

टीकाकार श्री ज्ञानसदेव मूर्ति का अभिप्राय.—

इस प्रकार मांसार्थ के वाचक प्रमाणों के मौजूद होने पर भी टीकाकार ने उस पक्ष का रसुद्धन क्यों नहीं किया ? ॥२८॥

कपोल आदि शब्द मांस भर्ष के वाचक नहीं हैं, इस प्रकार मांसार्थ निषेध में जो प्रमाण पहले बताये हैं, उनके होने पर टीकाकार का यह आशयक कर्षण या कि वे सुविध पक्ष का प्रमाण पूर्णक उद्भव

स्यावश्यककर्त्तव्यमस्ति यद्वाधितपक्षो निराकरणायः प्रमाणपुरस्सरमागमविरुद्धपक्षः स्वएङ्गीयः । अत्र कश्चिच्छब्देने यद् वृत्तिकारेण मांमार्थपक्षः कथं न स्पष्टितः ? 'श्रयमाणमेवार्थं कंचिन्मन्त' इति वाक्येन केषांभिन्मांसाथपक्षः किमर्थमुपन्यस्तः । यदि पूर्वपक्षरूपेणोपन्यस्तः स्यात्तदा तद्वाधनं स्वशब्देन किमर्थं न कृतमिति प्रश्नकाराशयः ॥२८॥

द्वितीयः-उपन्यास- —

अन्ये त्वाद्दुरयं पक्षः, किमर्थं नैव स्पष्टितः ।

योग्यायोग्यविमर्शेन, म्याशयः किं न दर्शितः ॥२९॥

अन्य इति:—कपोतकः पक्षिशेषस्तद्भू ये कले वर्यम्पद्योने कपोते कृमागटे हरे कपोते कपोतके ते च शरीरे वनस्पतिजीवहेतुत्वात् कपोतकशरीरे, इत्यादिना वनस्पत्यर्थके द्वितीयपक्ष उपन्यास मांमन्वयार्थं न तु स्वस्य । यदि स पक्षोऽपि स्वामिननन्तर्दि किमर्थं तन्मसहन्-स्वापत्तं न कृतं माधकशपक्षप्रमापौनशाभ्यायोग्यवपयो तोचनेन मांमार्थं वापने किमर्थं नितासथं न प्रकटीकृत ॥२९॥

अन्ये त्वाद्दुरयं पक्षः, किमर्थं नैव स्पष्टितः —

इत्यन्यत्र शून्यकारेण, यथापूर्वं न स्पष्टितः ।

अत्रापि ज्ञापने नम्याशयः पूर्वमनिरोधणान् ॥३०॥

वृत्त्यादि:—यद्वाधितपक्षो निराकरणायः प्रमाणपुरस्सरमागमविरुद्धपक्षः स्वएङ्गीयः । अत्र कश्चिच्छब्देने यद् वृत्तिकारेण मांमार्थपक्षः कथं न स्पष्टितः ? 'श्रयमाणमेवार्थं कंचिन्मन्त' इति वाक्येन केषांभिन्मांसाथपक्षः किमर्थमुपन्यस्तः । यदि पूर्वपक्षरूपेणोपन्यस्तः स्यात्तदा तद्वाधनं स्वशब्देन किमर्थं न कृतमिति प्रश्नकाराशयः ॥२८॥

यद्वाधितपक्षो निराकरणायः प्रमाणपुरस्सरमागमविरुद्धपक्षः स्वएङ्गीयः । अत्र कश्चिच्छब्देने यद् वृत्तिकारेण मांमार्थपक्षः कथं न स्पष्टितः ? 'श्रयमाणमेवार्थं कंचिन्मन्त' इति वाक्येन केषांभिन्मांसाथपक्षः किमर्थमुपन्यस्तः । यदि पूर्वपक्षरूपेणोपन्यस्तः स्यात्तदा तद्वाधनं स्वशब्देन किमर्थं न कृतमिति प्रश्नकाराशयः ॥२८॥



। अतएव यहाँ कोई संका कर सकता है कि टीकाकार ने उस पक्ष  
 लण्डन नहीं किया ? 'ध्वजमानमेवार्थं केचिन्मन्वन्ते' ( कोई कोई  
 मुने जाने वाले अर्थ को मानते हैं ) इस वाक्य से किमा का मत  
 है, ऐसा क्यों कहा ? यहाँ प्रश्नकर्ता का भासाय यह है कि  
 इस वाक्य से टीकाकार ने पूर्व पक्ष किया है तो अपनी ओर से  
 लण्डन क्यों नहीं किया ? ॥ २८ ॥

दूसरा पक्ष.—

दूसरे लोग कहते हैं कि इस ( वनस्पति अर्थ ) पक्ष का  
 नि मंडन क्यों नहीं किया ? योग्य-अयोग्य का विचार  
 करके अभिप्राय क्यों नहीं प्रदर्शित किया ? ॥ २९ ॥

कपोत अर्थात् कवृत्तर पक्षी, और उसके रंग के समान त्रिल फल का  
 हो वह कपोत फल अर्थात् कोला । क्योंकि कोला में वनस्पति  
 होता है अतः उसे कपोत-दारीर कहने हैं । इस प्रकार टीका-  
 के जो दूसरा पक्ष किया है वह भी दूसरों का मत बताया है—अपना  
 । यदि टीकाकार को यह अर्थ स्वीकार या तो, साधक-बाधक प्रमाणों  
 द्वारा, योग्य-अयोग्य का विचार करके सांसार्थ का लण्डन करने में  
 मत क्यों नहीं प्रगट किया है ? तात्पर्य यह है कि टीकाकार ने  
 जो अर्थ दिये हैं अगर वे दूसरों के मत के अनुसार दिये हैं । अपना  
 से कुछ भी अर्थ नहीं लिखा । इसका क्या कारण है ? ॥ २९ ॥

निबन्ध-कालक का समाधान —

इस विषय में मैं कहता हूँ—यद्यपि टीकाकार ने स्पष्ट शब्दों  
 में कुछ नहीं कहा है तो भी मूकम निरीक्षण करने से उनका  
 भाव्यम हो जाता है ॥ ३० ॥

इस विषय में मैं कुछ कहता हूँ—यद्यपि टीकाकार ने पूर्व पक्ष या उत्तर  
 पक्ष के विषय में अपने शब्दों में कुछ नहीं कहा है, तथापि पूर्वपक्ष का

कोऽभिप्रायो विद्यते, स तु पूर्वापरपर्यालोचनेन ज्ञातुं शक्यते। पूर्वपक्षस्य कियानादरः कृतः ? उत्तरपक्षस्य च तात्रातेवादो वाऽधिकादरः ? । पूर्वपक्षस्य कियदालोचनपूर्वकार्थावधारणं दर्शितमुत्तरपक्षस्य च कियदिति सूक्ष्मरीत्या पर्यालोचने कृते त्वदर्थमेव तदाशयपरिज्ञानं स्यादेवेति ॥१०॥

पूर्वोत्तरपक्षयोः किं न्यूनाधिक्यं तददर्शयति—

निर्हेतुकश्च संक्षिप्तः पूर्वपक्षो न चादृतः ।

द्वितीयो विस्तृतः स्पष्टमुत्तरपक्षलक्षणः ॥३१॥

निर्हेतुक इति—श्रूयमाणमेवार्थं केचिन्मन्यन्ते इत्येकवाक्यमात्रेणैव पूर्वपक्ष उच्यते । नात्र कश्चिद्वेतुर्दर्शितः । न वा साधकशाधकप्रमाणानि । न वा परामर्शः । संक्षेपेणैव तन्मतोपदर्शनं कृतम् । श्रूयमाणमेवार्थं मन्यन्ते इति वाक्यमपि तत्पक्षस्य पर्यालोचनशून्यत्वं दर्शयति । कुतः ? सर्वत्र शब्द एव श्रूयमाणो भवति नत्वर्थः । शब्दश्रवणानन्तरमीहा-पर्यालोचना भवति ततोऽवायोऽर्थावधारणं भवतीति मतिज्ञानस्यायं मामान्यनियमः । अत्र त्वर्थस्य श्रूयमाणत्वमुक्तं तत्कथं घटते । शब्दार्थयोः क्वचिदभेदाश्रयत्वेन शब्दवदर्थस्य श्रूयमाणत्वे स्वीकृते तत्रेहा-पर्यालोचना व्यापारो न प्रतीयेत । तथा चात्र मांसार्था घटते वा न घटते शास्त्रान्तरे तद्वाधकप्रमाणानां सद्भावेन बाध्यतेऽत्र मांसार्था नयेति पर्यालोचनाविरहेण न यथार्थाशयस्तत्र संभवति । शब्दवदर्थः

विचार करने से यह निश्चित हो जाता है कि टीकाकार का क्या विचार है? उन्होंने पूर्व पक्ष (मांसार्थ पक्ष) को कितना स्वीकार किया है? और उत्तर पक्ष (वनस्पति-अर्थ) को उतना ही या उससे अधिक किया है? कितनी आलोचना करके पूर्व पक्ष के अर्थ का किया है और उत्तर पक्ष के विषय में कितनी आलोचना की है? इस प्रकार सूक्ष्म रीति से विचार करने पर उनका भाषाएँ अरुण मात्स्य ही जाता है। ॥ ३० ॥

पूर्व पक्ष और उत्तर पक्ष की न्यूनाधिकता—

पूर्व पक्ष को संक्षेप में कहा है और कोई हेतु नहीं दिया, अतः पूर्व पक्ष को उन्होंने स्वीकार नहीं किया किन्तु उत्तर पक्ष विस्तार से और स्पष्ट रूप से बताया है ॥ ३० ॥

'धूपमाणमेवार्थं केचिन्मम्यन्ते' (गुने जाने वाले अर्थ को ही कोर्ते हैं) इस एक वाक्य के द्वारा ही पूर्व पक्ष का निर्देश कर दिया है। इसमें कोर्ते भी हेतु नहीं दिखाया और न साधक-बाधक प्रमाण ही है। इसका कुछ परामर्श भी नहीं किया। बहुत संक्षेप में ही यह मत दिखा दिया है। 'धूपमाणमेवार्थं मम्यन्ते' यह वाक्य भी उत्तर पक्ष को विचार सूक्ष्मता का निर्देश करता है; क्योंकि अर्थ बड़ी गुना नहीं जाना—वाक्य ही सर्वत्र गुना जाता है। वाक्य गुनने के बाद ईहा—पर्यालोचना (विचार) होता है। ईहा के अनन्तर अभाव होता है और तब अर्थ का निश्चय होता है। प्रतिज्ञा का यह सामान्य नियम है। अगर यहाँ अर्थ का गुना जाना कहा है तो यह ईहे सीक हो सकता है? वाक्य और अर्थ सर्वथा भिन्न नहीं हैं—कथञ्चिद् अभिन्न है अतः यहाँ अनेक की अपेक्षा से अर्थ का गुना जाना कहा है। यदि ऐसा मान लिया जाए तो उसमें ईहा नहीं होगी यदि। ऐसी हालत में 'मांसार्थं गुण है या नहीं, दूसरे शास्त्रों में मांसार्थ के बाधक प्रमाण का उद्भाव है अतः यहाँ

श्रुतः । न पर्यालोचनपूर्वकमवधारित इति तात्पर्यं प्रकृतवान् ।  
 स्तीति पूर्वपक्षे वृत्तिकारस्य न सम्यगादरः प्रतीयते । किंच  
 श्रूयमाणोऽर्थ इत्यपि स्पष्टं नोक्तम् । अथ द्वितीयपक्षस्तु वित्तं  
 स्पष्टमुक्तः स चोत्तरपक्षरूपेणोपन्यस्तः । तत्र पूर्वपक्षस्य सर्वत्र  
 स्वेनोत्तरपक्षलक्षणविशिष्टत्वम् ॥३१॥

उभयपक्षयोर्द्वितीयस्य प्राधान्यं दर्शयति—

शैल्यैतया द्वितीयस्य प्राधान्यं स्वीकृतं स्वयम् ।  
 प्रथमस्य च गौणत्वं, स्थापितं व्यंग्यहेतुतः ॥३२॥

शैल्येति—एतयोपरिदर्शितया शैल्या पूर्वपक्षत्वोत्तरपक्षत्व-  
 संक्षिप्तत्वं विस्तृतत्वनिरादरत्वसादरत्वनिर्हेतुकत्वसहेतुकत्वप्रतिपाद-  
 गर्भितरच नात्मकया रीत्या । द्वितीयस्य वनस्पत्यर्थं स्वीकुर्वतो द्वितीय-  
 पक्षस्य वृत्तिकारेण स्वयं प्राधान्यं स्वीकृतम् । मांसार्थं तात्पर्यमा-  
 कस्य प्रथमपक्षस्य च गौणत्वं स्थापितम् । कुत इत्याह व्यंग्यहेतु-  
 पञ्चम्यन्तराध्दात्मकहेत्वदर्शनेऽपि स्वमनोभावगतद्वेलेरित्यर्थः । य-  
 वृत्तिकारस्याशयः प्रथमपक्षस्वीकारे स्यात्तदा स द्वितीयपक्षव्यंग्य-  
 पक्षमपि विस्तरेण हेतुपूर्वकं स्पष्टं स्थापयेत् । तथा नोपदर्शितम्  
 तेन च तस्याशयः स्पष्टं ज्ञातुं शक्यते धीमद्भिरित्यलं विस्तरेण ॥३२॥

वृत्तिकारस्य स्पष्टाशयः—

किञ्च स्थानाद्ग्रीकायामनेनैव निजाशयः ।  
 फलार्थं दर्शितः स्पष्टं नात्रातः पुनरोरितः ॥३३॥



किञ्चेति—न केवलं वृत्तिकारस्याशयोऽनुमानगन्धेने  
 तु स्थलान्तरे स्पष्टोऽस्त्वितोऽपि वर्तते । स्थानाङ्गेति—स्थानाङ्ग-  
 भिधरुतीयाङ्गसूत्रस्य नवमे स्थाने टीकायां-वृत्तौ अनेनेने-

वाचकत्वमिति । निजारायः—स्याभिप्रायः दर्शितः स्वच्छोऽहः ।  
 तथाहि—

ततो गच्छ त्वं नगरमध्ये, तत्र रेवत्यभिधानया गृहपतिरन्व-  
 मर्षं द्वे कृष्णाण्डफलशरीरे उवच्छृते, न च ताभ्यां प्रयोगं  
 तथाऽन्यस्मि तद्गृहे परिगसितं मार्जोत्तभिधानस्य वायोनिवृत्ति-  
 कारकं युक्पुठमांसकं योजपूरक-कटाहमित्यर्थः, तथाहर, तेन च  
 प्रयोजनमिति—स्थानाङ्गसूत्रे नवमस्थाने सू० ६९१, १  
 ४५९-४५७”

अतः—अस्मात्कारणान् । अथ-भगवती-टीकायाम् । पुन-  
 भूयः । नेरितः—न प्रतिपादितः । स्थानाङ्गटीकाया पूर्वनिमित्त-  
 त्वात्तत्र स्पष्टतया निवेदितत्वात्तत्र पुनरुक्तम् । तत्र एवाशु-  
 चन्नेवनिमित्ततारायः

अ ३ ६५०२ती ६५०२वे ६५०२—

एतेषामथ शुद्धानां, वाचकत्वे वनस्पतेः ।

प्रयाणानि वदरुक्ते, स्पर्शशाश्वताः स्फुटम् ॥३४॥

एतेषामिति—अथराशु आनन्त्यायं ६ । संजायंति

५६०२५६०२ती ६५०२वे ६५०२—

टीकाकार का भाष्य केवल अनुमान गम्य ही नहीं किन्तु स्थान्तर में स्पष्ट उल्लिखित भी है अर्थात् स्थानाद् नामक तृतीय अङ्ग सूत्र के नवम स्थान की टीका में भगवती टीकाकार अभयदेव सूरि ने ही कुक्कुटमांसादि अरु फल्यार्थवाचक हैं, मांसांश वाचक नहीं हैं ऐसा अपना भाष्य स्पष्ट प्रकट किया है। जैसे कि "तु नगर में जा और रेवती नामक तूरपत्नी ने मेरे लिए जो दो कुष्माण्ड (कोष्ठा) के एक संस्कार करने के लिए हैं—उससे प्रयोजन नहीं है किन्तु उसके घर में दूसरा मात्रांश

का वायु की निवृत्ति करने वाला कुक्कुट मांसक अर्थात् विजैत—एक का गर्भ है वह सं भा; उससे हमारा प्रयोजन है।

(स्थानाद्सूत्र—नवम स्थान सू० १९१, ५० ४५६ ४५७) इस से टीकाकार ने भगवती की टीका में फिर यही बात नहीं बतलाई। कि स्थानाद् सूत्र की टीका पढ़के बताने गई है और वहाँ पर यही बात स्पष्ट बतलाई गई है अतः यहाँ पर पुनरुक्ति करने में नही इस कारण वहाँ में अनुसन्धान करने का टीकाकार का

६ अ ३३ अ

उक्त शब्दों के वनस्पति अर्थ की सिद्धि—

अथ इन शब्दों की वनस्पति अर्थ की वाचकता में स्व-पर

के स्पष्ट प्रमाण दिखलाये जाते हैं ॥ ३४ ॥

अथ वनस्पति का अर्थ है—इसके अनन्तर। अर्थात् मांसांश पक्ष का करने के अनन्तर प्रकृत शब्द वनस्पति-अर्थ के वाचक हैं, यह बात भी जाती है। इन शब्दों का वनस्पति अर्थ वाचक के मुख्य भादि में तथा वाचक कोष में प्रसिद्ध है। जैन सूत्रों में भी कहीं-कहीं अर्थ पाया जाता है। अतः पूर्व पक्ष के विभाषितियों के लिए प्रमा-

एतेषां शब्दानां तत्तद्वनस्त्रतिवाचकत्वं वैश्वकपुस्तके मुश्रुतादौ वैदिक-  
कोषे च प्रसिद्धमस्ति । तथा जैनसूत्रेऽपि क्वचित्प्रयाति । अ-  
पूर्वपक्षिणं प्रति स्वशास्त्रस्य प्रख्यापनादेः परशास्त्रस्य मुश्रुतादेव  
प्रमाणानि प्रामितिजनकवाक्यान्युद्धृत्य प्रदर्शयन्त इत्यर्थः ॥३४॥

प्रथमं कपोतशब्दायो निरूप्यन्त—

पारावतः कपोतश्चामरे पर्यायतः स्थितौ ।

पारावतस्तरुः सिद्धः, कपोतोऽपि तथा भवेत् ॥३५॥

पारावन इति—‘दुवे कवोयसरीरा’ इति प्रथमवाक्ये  
‘कवोय’ ( प्राकृते )—कपोत ( संस्कृते ) शब्दः प्रयुक्तः । कपोतश्च  
पारावतशब्दस्य पर्यायतयामरकोषे द्वितीयकारण्डे निगदितः ।  
तथाहि “पारावतः कलरवः कपोतोऽथ शरादनः ।” (पट्टि० १०१६)  
पर्यायत्वाद्योऽर्थः पारावतशब्दस्य स एवार्थः कपोतशब्दस्याऽपि  
भवितुमर्हति । अथ पारावतशब्दस्य तु पक्षिवाचकत्वं प्रसिद्धमिति  
चेद् वृक्षवाचकत्वस्यापि प्रसिद्धत्वात् । तथा हि मुश्रुतसंहितायां  
३३८ पृष्ठे—फलवृक्षप्रकरणे—“पारावत समधुरं रुच्यमस्थग्निवाक्-  
नुत्” पारावतवृक्षस्य मुश्रुतेऽनेकस्थलेपूढेस्वात्तस्य वृक्षत्वं सिद्धमेव ।  
तत्र एव कपोतस्यापि पारावतपर्यायत्वाद् वृक्षत्वं सिद्धमिति ॥३५॥

कपोतशब्दस्य द्वितीयार्थः—

शब्दसिन्धौ कपोतेन, पारीशोऽभिहितस्तरुः ।

पारीशेन पुनस्तत्र, प्लक्षवृक्षो निरूपितः ॥ ३६ ॥

शब्दसिन्धौ—वैश्वकशब्दसिन्धवाक्यकोषे १९३ पृष्ठेकपोतेन—





कपोतशब्देन पारीशः पारीशनामकस्तरुः वृक्षोऽभिहित इत्यर्थः । पुनश्च तत्रैव पुस्तके ६०१ पृष्ठे पारीशेन पारीशशब्देन प्लक्षवृक्षो निरूपितः कथित इत्यर्थः । वनौषधिदर्पणाख्यपुस्तके ४४७ पृष्ठे पश्यतामिदं प्लक्षवर्णनम्—

“प्लक्षः—Ficus infectoria.

A large deciduous tree. Astringent and cool.

प्लक्षः कपायः शिशिरो, त्रणयोनिगदापहः ।

दाहपित्तकफामग्नः, शोधहा रक्तपित्तहृत् ॥”

तथा च कपोतशब्दवाच्यप्लक्षवृक्षस्य दाहपित्तनाशकत्वेन संभवत्यत्र तदुपयोगः । शरीरशब्दस्य तूभयत्र वृक्षात्मकशरीरैकाग्र्ये फले लक्षणाकरणेन भवति निर्वाहः ॥ ३६ ॥

६पाठस्य पाठान्तरत्वेन तृतीयोऽयं—

यद्वा प्रागत्र कावोर्द, कवोयश्रुतिमागतः ।

ह्रस्वत्वं च यकारश्च, स्थानसाम्यात्प्रमादतः ॥ ३७ ॥

यद्रेति—अथवा शरीरशब्दस्य शक्तिमात्रेण निर्वाहः स्यात् तादृशं यदि प्रकारान्तरं संभवति तदा तद्दर्शनीयमित्यतः प्रश्नान्तरदर्शनीयक्रमः । अत्र अस्मिन्प्रकरणे प्राक्— सूत्राणां पुस्तकादौहृत्पूर्वं धृत्यनुश्रुतिप्रवाह आसीत् । गुरुः शिष्यमध्यायस्य पुनर्भान्दिदयमिति कर्षोपकरणश्रवणपरंपरायां देशविशेषोच्चारणभेदः, श्रुतिभेदश्च संभवत्येव, वर्तमानेऽपि तथा दृश्यते । तथा चात्र धृत्यनुश्रुतिसमये कावोर्द-कावोर्त्याकारकशब्दः कवोयत्वात्





घण्ट का रूद्र ( पाश्चर ) वायव्य वृक्ष अर्थात् बड़ा है । बमीचधिरूपेण नामक पुस्तक के दृष्ट ५४० पर रूद्र का वर्णन इस प्रकार दिया है—

रूद्र—*Ficus infectoria*

A large deciduous tree, Astringent and cool

'लघु कसैला, शीतल, मस्य और योनि के रोगों का नाराक, दाह, पित्त तथा कफ का मिटाने वाला, शोथ रोग और रक्तपित्त का नाराक है ।

इस प्रकार कसौल घण्ट का वायव्य रूद्र वृक्ष दाह और पित्त का नाशक है अतएव सम्भव है उसका उपयोग किया गया हो । रहा शरीर घण्ट, शो कस, वृक्ष रूप शरीर का एक अवयव होता है और सक्षमा वृत्ति से उसका अर्थ ठीक बैठ जाता है ५३१५

पाठान्तर से वर्णन का तीसरा अर्थ—

अथवा इस पाठ में पहले कावोई शब्द होगा जो 'कवोय' ऐसा सुना गया होगा । ह्रस्व 'क' और 'ई' की जगह 'व' प्रमाद से हो गया होगा, क्योंकि इनके उच्चारण स्थान एक ही हैं ॥ ३७ ॥

शरीर घण्ट का प्रथम शक्ति से ही युक्त हो जाए, ऐसा कोई प्रकार यदि हो सकता है तो बताइए ? ऐसी धारणा होने पर दूसरा प्रकार दिखाते हैं । पुस्तक रूप में विविध होने से पहले मूर्तों में धृति-भनु-धृति की परम्परा थी । गुरु अपने शिष्य को गुरु मुनाता था और वह शिष्य फिर अपने शिष्य को मुनाता था । इस प्रकार कानों ऊन मुनने की परम्परा होने पर देश के भेद से उच्चारण में और धृति में भेद होना सम्भव है । वर्तमान काल में भी यह बात देखी जाती है । अतः श्रुति भनुधृति की परम्परा के समय 'कवोई' शब्द 'कवोय' ऐसा सुना गया । शास्त्रों के लिखने की प्रजापति महार्घार न्यायी के निर्वाण से १८० वर्षे अतीत हो जाने पर आरंभ हुई थी । उसमें पहले और उसके पश्चात्





तथा च सुपारी शरीरशम्भरहारो नानुपपन्नः । वैदकवाये-  
ऽपि जनस्फो पशुपुष्पकलारीनामङ्गल्यपरिपादनकारणो गीतान्देव  
शरीरशम्भसमाप्तः सार्धकः । विश्वप्रयोगोऽपि सगल इति ॥३९॥

ननु कुम्भापः कनकेन चित्तलेन विदेवान् प्रतिप्रसतस्यै विद्वान्  
भवति ॥३९॥ आह—

इत्तुस्त्वर कुम्भापः सार्धकः प्रयोगे ।

यथाभूत्स्य शम्भस्या-सराश्यास्त्रयताग्रहान् ॥४०॥

इत्तु इति—पाराकल्पसुकापोतोना चित्तले

एतन्नैव चित्तोऽपि तवपुरस्कनक्षमोरामपुनीनां वीथानामभि-  
षास्यामिन्व राणे कुम्भापकालागारि कार्यागिर् प्रतिभावि । नते  
कस्तमिरे वामकारान्तरगुणने । इत्तुत्स्ति-रति—यु १००  
ति. सार्धक, पूर्ति-सार्धक पशुः विश्वप्रयत्न इत्यर्थः । अत्र  
कारणवत्तया, यथाभूत्स्य कर्मानुगतस्य यथा हरणे भूया  
स 'इत्तु कुम्भापयोषा' एव साश्यास्य 'कर्मोपशरीर' ( कर्मो-  
पशरीर ) सार्धक कुम्भापः—कुम्भापकनकित्यर्थः । सार्धक—  
सार्धकः सार्धकः सार्धकः सार्धकः सार्धकः—सार्धकः । ननु कर्मो-  
पशरीर इत्यर्थः कुम्भापकालागारि न कर्मोप कर्मोपसिद्ध इति कर्म  
कर्मोपशरीरः सार्धकः इति, कर्मोपशरीर इत्यर्थः सार्धकः सार्धकः  
सार्धकः—सार्धकः सार्धकः सार्धकः सार्धकः—सार्धकः  
सार्धकः सार्धकः सार्धकः सार्धकः—सार्धकः

यु १०० इति—यथाभूत्स्य शम्भस्या-सराश्यास्त्रयताग्रहान् ॥४०॥  
सार्धकः सार्धकः सार्धकः सार्धकः—सार्धकः



समाधान—हाँ है। त्रिमेत्र भगवान् ने सूत्र में कहा है कि वन-  
रे वायु को औद्योगिक ईत्रस कामें यह तीन अंग होते हैं। अतएव  
आदि में सारोरे शब्द का प्रयोग करना अनुचित नहीं है। ईत्रक  
में भी वनस्पति के पत्र पुष्प फल आदि को अंग कहा है, अतएव  
को शब्द के साथ सारोरे शब्द का समास सार्थक है और 'ई' शब्द  
प्रयोग भी युक्तियुक्त है ॥१९॥

कृष्णाण्ड फल ही पित्त का नाशक विशेष रूप से प्रतिद्व है, अतः यहाँ  
को अर्थ क्यों न लिया जाय ? सो कहते हैं—

वास्तव में तो यहाँ जैसा शब्द इस समय सुना जाता है,  
को आम-वाक्य से तथा शक्ति-मह से कृष्णाण्ड अर्थ ही  
प्रतीत होता है ॥३०॥

वर्षादि पारायत, कुष्ठ और कपोती, पित्त और शह के नाशक हैं,  
भी जयपुर निवासी श्रीहरमीरामजी आदि ईशों की सम्मति के अनु-  
इस रोग में कृष्णाण्ड फल ही अधिक उपयोगी प्रतीत होता है।  
। निश्चित रूप से बल-पूर्वक कहते हैं कि—इस प्रकरण में, वर्तमान-  
शैल दुस्तको में 'दुधे कपोप खरीराओ' ऐसा जो वेला और सुना जाता  
सो इस वाक्य में आवे हुए 'कपोपखरीर' ( कपोत ) शब्द का कृष्णा-  
( कोला ) अर्थ ही पारलौकिक ज्ञात होता है।

संज्ञा—'कपोत सारोरे' शब्द का कृष्णाण्ड अर्थ किसी भी शेष में  
सुद्ध नहीं है, ऐसी हालत में यह अर्थ कैसे हो सकता है ?

समाधान—शेष के बिना भी व्याकरण तथा भास वाक्य आदि से  
क प्रथम व्यावसाय में प्रसिद्ध है। सिद्धान्तमुक्तावली ( कारि-  
वली ) के पृ० ८३ में कहा है—

व्याकरण से, उपमान से, कोश से, आक्षेपवाक्य से, व्यवहार  
, पाक्यशेष से, विकरण से, तथा सिद्ध पद के सम्बन्ध से  
कि क्य महण होता है।



## रेवती-दान-समालोचना

दाँ पर भास बारव से पूष्माण्ड में जन्म पाइ होता है। भास  
 कीरसा है। इस प्रश्न का समाधान यह है कि टीकाकार ने द्विती  
 को बजाने वाला जो वाक्य टीका में दिया है, वही भासवाक्य है  
 भी है—“अन्वे त्वाद्वा—कपोतकः—पश्चिमिन्नेपस्तद्भु वे कसे वर्ण  
 म्नांते कपोते—पूष्माण्डे हन्वे कपोते कपोतके ते च तं क्षरीरे वनस्वति-  
 त्वाद् कपोतक्षरीरे, अथवा कपोतक्षरीरे एव पूस्वरवर्णसाधम्पादेव  
 क्षरीरे—पूष्माण्डफलं एव।”

यदि इतने से भी सुतोष न हो तो कपोत क्षरीर (कपूतर के क्षरीर)  
 व की समानता के कारण पूष्माण्ड फल में इसकी कक्षणा करना  
 । कक्षणा भी वाग्द की एक शक्ति है और उससे भी अर्थ की  
 जे होती है। पूष्माण्ड के गुण वैद्यक शास्त्र में प्रसिद्ध हैं। कहा भी है—  
 उनमें घाल और मध्यम कूष्माण्ड पित्त नाशक, कफ  
 ने घाला होता है। पका हुआ कूष्माण्ड लघु, उष्ण है,  
 सहित दपित और बस्ति को शुद्ध करता है।

—सुधुत संहिता पृ० ३३५

कूष्माण्ड शीतल, पौष्टिक, स्यादिष्ट, पाकरत, भारी,  
 कारक, रूक्ष, दस्तावर, कम्प उत्पन्न करने वाला, कफ वर्धक  
 र वातापिच का नाशक है। कूष्माण्ड का शाक भारी है,  
 क्षयात ज्वर, आम, सूजन तथा अग्निदाह को मिटाने वाला है।

—कैयदेवनिपण्टु पृ० ११५

इसमें यह अर्थ चटित होता है कि पूष्माण्ड का शाक उष्ण और दाह  
 यान्न करता है अतएव दो पूष्माण्डों का शाक उष्ण रेवती में  
 का था ॥ ३० ॥



मञ्जार शब्द का अर्थ—

प्रज्ञापना सूत्र के प्रथम पद में तथा भगवती सूत्र के श्लोकों में, मञ्जार शब्द वनस्पति के अर्थ में प्रयुक्त है ॥ ४१ ॥

कोई-कोई यह कहते हैं कि टीकाकारने अपर-मुख से जो कहा है वही मञ्जार नामक वनस्पति है ॥ ४२ ॥

प्रज्ञापना नामक उपाह्व सूत्र के प्रथम पद में तथा भगवती नामक अंत सूत्र में के दृष्टीसर्वे पत्रक में 'मञ्जार' शब्द वनस्पति अर्थ में है। भागमोक्ष समिति द्वारा प्रकाशित भगवती सूत्र के पृष्ठ १ में इस प्रकार पाठ है—“अन्वसद्वोषामहरितागतं दुलेज्जगतमवधुल्लगमञ्जारपोद्बिस्त्रिया” इत्यादि। प्रज्ञापना के प्रथम पद में दृष्ट के अर्थ में “वधुल्लगमञ्जारपोद्बिस्त्रिया” ऐसा पाठ है।

यहाँ टीकाकार ने भवना और से मात्रां शब्द का अर्थ नहीं किया है। द्वितीय पक्ष के अन्तर्गत 'दूमे कहते हैं' 'अन्व लोष कहते हैं' इस से दो भवान्तर पक्षों के सूत्र में 'मञ्जार' शब्द की व्याख्या की है। इन प्रकार है—

“दूमे कहते हैं कि मात्रां अर्थात् एक प्रकार की वायु उठे शास्त्र के लिए जो किया गया-पड़ाया गया-हो, वह मात्रांकृत।” कोई कहते हैं कि मात्रां अर्थात् विराडिका नाम की एक वनस्पति, उसके द्वारा किया-बनाया-गया हो वह 'मात्रांकृत'। यहाँ दो अन्तर्गत पक्ष। पहला पक्ष मात्रां शब्द की वायु-विशेष का वाचक मानता है और दूसरा पक्ष कहता है कि मात्रां का अर्थ विराडिका नामक वनस्पति है। अन्व-सक से टीकाकार ने जो विराडिका नामक वनस्पति बताया वही ( विराडिका ) इस प्रकार में मात्रां शब्द का वाच्य अर्थ है।

श्रीगणेशाय नमः

शंकर ।

प्रसङ्गे मञ्जारशब्दवाच्यत्वेनाभिमता वनस्पतिः तस्याः प्रकृतोपयो-  
गित्वात्तथाहि-शब्दार्थचिन्तामणिचतुर्यभागे ३२२ पृष्ठे-“विडाली-  
खी भूमिकूष्माण्डे ।” वैद्यकराजसिन्धौ ८८९ पृष्ठे-विडालिका-  
खी भूमिकूष्माण्डे ।” कैयदेवनिघण्टौ ३९७ पृष्ठे-“४६७ विदा-  
रीद्वयम् ( विदारी. क्षीरविदारी च )

*Ipomea digitata*  
A large perennial creeper  
Tuberous root demulcent  
Nutritive, aphrodisiac and  
lactagogue

(हि) विदारीकन्द, बिलाई कंद.  
(व) भूई कूम्डा.  
(म०) भूई कोहला  
(गु) भोकोलु

विदारीक्षुविदारी स्यात्स्वादु कन्दा विदारिका ।

कूष्माण्डकी कन्दवल्ली वृक्षकन्दा पलाशकः ॥१३६७॥

गजवाजिप्रिया वृष्या वृक्षवल्ली विडालिका ॥ इत्यादि

विदारी बृंहणी वृष्या सुस्निग्धा शीतला गुरुः ।

मधुरा मूत्रला स्वर््या स्तन्यवर्णवलप्रदा ॥ १४०१ ॥

पित्तानिलास्रदाहघ्नी जीवनीया रसायनी ॥”

इत्यादि ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

रक्तचित्रकद्रुपस्य मञ्जारशब्दवाच्यत्वऽपि प्रकृतानुपयोगित्वम्—

शब्दसिन्धौ क्षुपे प्रोक्तो, मार्जारो रक्तचित्रके ।

नास्ति तस्योपयोगित्वं, प्रकृते प्रातिकूल्यतः ॥४३॥

शब्दसिन्धौ इति-वैद्यकराजसिन्ध्यात्यकोपे । मार्जारः-

प्राकृतमञ्जारशब्दस्य संस्कृतद्वायारूपमार्जारशब्दः । रक्तचित्रके-

की इस मसंग में उपयोग है। चारुधर्मचंगतामणि, अग्रुध भाग, पृष्ठ १३२ में कहा है—“विदारो (धा)-भूमिदृष्याण्डे।” विषक चन्द्र सिन्धु . ८०९ में लिखा है—“विदारिका—( धारिकग ) भूमिदृष्याण्डे।” देव विषण्टु पृष्ठ २९० में लिखा है—

४६० विदारी द्वयम् ( विदार, धारिविदारो च )

Humeca digitata	(हिर्दी) विदारीकन्द, विदारिकन्द
A Large perennial creeper	(बगळा) भूद्वंशमहा
Tuberous root of mul cent	(मारी) भूद्वं कोइला
Nutritive, aphrodisiac & lactagogue	(गुजराती) भोकोलु

विदारी, इधुविदारो, स्वादुकन्दा, विदारिका, कम्पाडकी, कन्दवल्ली, वृक्षकन्दा, पलाशक, गजवाजिपिया, वृष्या, वृक्ष-वल्ली, विदालिका, इत्यादि विदारी के नाम हैं। १३२७।

विदारो, वृहिणी, पीष्टिक, स्निग्ध, शीतल, गुरु, मधुर मूत्र पैदा करने वाली, स्वर को सुन्दर करने वाली, दूध, रूप, और बल का बढ़ाने वाली है। पित्त, वायु तथा दाह नाशक और जीवनी रसायन है। इत्यादि ४१-४२

रक्त चित्रक नामक छोटे पेड़ का मज्जार शब्द का वाच्य मानना प्रचरण अनुपयोगी है—

वैद्यक शब्द सिन्धु नामक कोप में प्राकृत भाषा के मज्जार शब्द की संस्कृत छाया रूप मानार शब्द, रक्तचित्रक नामक छोटे उ के अर्थ में कहा गया है।

रक्तचित्रकाभिधे चुपे —चतुष्टये पोक्तः—अयिनः । तथाहि—  
 “माज्जारः-पुं, रक्तचित्रकशुपे. रा. नि. व. ६ । पूर्विसारिकायान् ।  
 वै. निप. । विडालं, अम. । खट्वारो. हे. च. (कः) मयूरे त्रिका ॥”  
 पृ. ७४७.

“रक्तचित्रक-पुं. ( *Plumbago rosea* or *coccinea* syn. *P. rosea* ) रक्तपर्णदण्डपत्रचित्रकशुपे । गुणाः—स्यौत्स्यकः  
 रुच्यः कुष्ठन्नः रसनियामकः लौहवेधकः रसायनः चित्रकान्तराद्-  
 गुणाद्ध्यञ्च । रा. नि. व. ६ ।” पृ. ७८९.

प्रकृते—प्रकृत्वप्रसङ्गे रक्तातिसारभित्तज्वरशहरोगप्रसङ्गे ।  
 तस्य-रक्तचित्रकशुपस्य । उपयोगित्वं—उपयोगः । नास्ति—न  
 विद्यते । कुतो नेत्याह—प्रातिकूल्यतः रागप्रकृतेः प्रतिज्ञोन्त्वा-  
 द्रोगस्योष्णस्वभाक्त्वादस्याप्युष्णस्वभावत्वात् ॥ ४३ ॥

कडपशब्दार्थः—

कडए इति शब्दस्तु, संस्कृतभाषितार्थकः ।

वहर्थत्वेन धातूनां, वृत्तिकारेण दर्शितः ॥ ४४ ॥

कडए इति—कडए इत्यस्य कृतक इति ज्ञाया । कृत  
 एव कृतकः । स्वार्थे क प्रत्ययः । टीकाकारेणैव कृतशब्दस्य  
 संस्कृतं भाषितमित्यर्थद्वयं निरुक्तम् । करणार्थक-कृधातोः  
 संस्कारभावनार्थकत्वं कथं स्यादित्यत आह वहर्थत्वेनेति—धातू-  
 नामनेकार्यत्वादिति व्याकरणशास्त्रे प्रसिद्धम् ॥ ४४ ॥

कुक्कुटशब्दार्थः—

कुक्कुटः मुनिपण्णारूये, शाके शान्मलिपादपे ।

कुक्कुटी मातुलुङ्गेषु, मधुकुक्कुटिका तथा ॥ ४५ ॥



**यह एक प्रश्न—**

कार्यः—यु० एक चित्रक युवे ए० वि० प० ६ । प्रतिमाविकाषाम् ।  
 • निष् । विशाले, अम० । अहापो. हे च (का) मगूरे प्रिका. वृ ७५०  
 यहाँ रत्नानिहात, विश अर और एक रोग के प्रसंग में रत्नचित्रक  
 प्र कपसोमी नहीं है । क्योंकि यह रोग की प्रकृति से प्रतिबुद्ध है,  
 और रोग का स्वभाव भी उत्पन्न है और इस वृत्त का स्वभाव भी  
 य है ॥ ४६ ॥

**कउए शब्द का अर्थ—**

धातुओं के अनेक अर्थ होने हैं, अतएव टीकाकार ने 'कउए'  
 शब्द के संस्कार किया हुआ और भावित किया हुआ, ऐसे दो  
 'किये हैं ॥ ४४ ॥

'कउए' यह प्राकृत भाषा का शब्द है । इसका संस्कृत भाषा में  
 'क' रूप होता है । इस ही रूपक । यहाँ सार्थक में 'क' प्रत्यय  
 मा है । टीकाकार ने ही कउ शब्द के 'उत्कृष्ट' तथा 'भावित' के  
 । अर्थ किये हैं ।

संज्ञा—ह धातु का अर्थ 'करना' है । ऐसी दशा में उससे संस्कार  
 भावना का अर्थ कैसे ले सकते हैं ?

समाधान—प्रत्येक धातु के अनेक अर्थ होते हैं, यह बात व्याकरण  
 शास्त्र में प्रतिबद्ध है ॥ ४४ ॥

**कुम्कुट शब्द का अर्थ—**

कुम्कुट शब्द का अर्थ मुनिपण्य नामक शाक-वनस्पति और  
 ममल का वृक्ष, होता है । कुम्कुटी तथा मधुकुम्कुटिका का  
 अर्थ है मातुलिंग- ( बिजौरा ) । टीकाकार के मत से बिजौरे

वृत्तिकाराशयात्तस्मिन्, कुक्कुटोऽपि प्रवर्तते ।  
 स्वस्तिकस्योपयोगेऽपि, मांसशब्दो निरर्थकः ॥ ४६ ॥  
 शात्मलेः फलवच्येऽपि, नात्र तस्योपयुक्तता ।  
 मातुलुङ्गं तु सार्थक्यं, सर्वथास्तस्तदाश्रयः ॥ ४७ ॥

त्रिभिः कुलकम् ।

कुक्कुट इति—'कुक्कुडमंसण' इत्यत्रार्पणकुक्कुडशब्दस्य संस्कृतच्छाया कुक्कुट इति भवति । कुक्कुटशब्दस्यानेकार्थकत्वेऽपि शाकवृत्तार्थकत्वमत्रोपयुक्तमिति तदेव दर्शयति । कुक्कुट इति कुक्कुटेत्याकारकः शब्दः मुनिपण्णाख्ये स्वस्तिकाभिधेः शाकं व्यञ्जनोपयोगिवनस्पतिविशेषे शात्मलिपादपे—शात्मलिनामख्यातं वृत्ते वर्तते इति शेषः । तथाहि—वैद्यकशब्दसिन्धौ २५९ पृष्ठे ।

“कुक्कुटः—( कः ) । पुं । मुनिपण्णशाके । भां. पू. १ भ. शाकव. । मुण सुणा रान्माठ इति कोङ्कणे । शात्मलि वृत्ते ।”

कैयदेव निघण्टौ १४६ पृष्ठे—

“१६५ मुनिपण्णाकः ( शितिवार )

Marsilea Quadrifolia	}	(हि) शिरोआरी, चौपातया	
A four-leaved aquatic hot-herb		}	(बं) शुपुनिशाक. (म) करइ
Cool, diuretic and astringent			(गु.) उटीगण, चतुष्पत्री
	}	हरितक. चीत, मूत्रल, माही ३	

मुनिपण्णः सूचीपत्रश्चतुष्पत्रो वितुन्नकः ।

श्रीवारकः शितिवारः स्वस्तिकः कुक्कुटः सितिः ॥

अर्थ में कुक्कुट शब्द का भी प्रयोग होता है। स्वस्तिक मुनिपण्य ) यहाँ उपयोगी होता है परन्तु मांस शब्द निरर्थक है। सेमल के वृक्ष में यक्षि फल होते हैं परन्तु वह इस में उपयोगी नहीं है। हाँ, मातुलिग ( विजौरा ) सब प्रकार में उपयोगी है अतः उसी अर्थ का आश्रय लेना है ॥ ४५-४६-४७ ॥

'कुक्कुटमंसप' इस पद में भाव कुक्कुट पत्र की संल्लव प्राणा है। कुक्कुट के अनेक अर्थ होते हैं, लेकिन इस प्रकरण में या वृक्ष अर्थ ही उपयोगी है, अतः उसीसे दिखवाते हैं।

कुक्कुट पत्र मुनिपण्य अर्थात् स्वस्तिक नामक व्यंजन उपयोगी क के अर्थ में है और उसका दूसरा अर्थ काष्मलि ( सेमल ) का वृक्ष होता है।

वैद्यक पत्र सिन्धु ( पृष्ठ २५९ ) में लिखा है—

“कुक्कुट ( क ) पु० । मुनिपण्य प्राके । भा. पृ. १ अ. काष्म. पु. । रात्राड इति श्येदुजे । काष्मलि वृक्षे ।”

ईषदेव निपण्य पृष्ठ १४९ में लिखा है—

१५ मुनिपण्यकः ( चित्तिवार )

<p>qualifolia. ' four leaved aquatic hot-herb ' cool, diuretic and astringent,</p>	}	<p>(दि.) चित्तोभारो, चौरातवा (बं) सुमुनिपण्यक, (म.) करह (पु.) उदोगल, चतुष्पत्री, इतिवक लीन, मूत्रक, घाही ।</p>
--	---	--

मुनिपण्यक, मूर्ध्निपत्र, चतुष्पत्र, चित्तुनक, धावारक,

, रक्षितक, कुक्कुट, सिति, शूस्या, भायस, ये मुनि-

चागेरिपत्रसदृशपात्रः शूल्या च वायसः ॥ ६३३ ॥”  
शालिग्रामनिघण्टुभूषणे ८७८ पृष्ठे—

“सुनिपण्णकनामानि—

सितिवारः सितिवरः स्वस्तिकः सुनिपण्णकः ।

श्रीवारकः सूचीपत्रः पर्णाकः कुक्कुटः शिखी ॥

अस्य गुणः—

सुनिपण्णो लघुर्माही वृष्योग्निक्वत्प्रिदोपहा ।

मेधासूचिप्रदोदाहज्वरहारी रसायनाः ॥”

वैद्यकशब्दसिन्धौ १९२ पृष्ठे—

“शात्मलिः—पुं. स्त्री । Bombox malabarica. Syn. Selmalia malabarica स्वनामख्यातमहाठरौ । गुणाः

वृष्यो बल्यः स्वादुः शीतः कपायो लघुः स्निग्धः शुक्रश्लेष्म-  
वर्धनश्च । तद्रसगुण एव माही कपायश्च । तत्पुष्पकजमभि  
तत्समगुणमेव । रा. नि. व. ८ । तत्पुष्पं धृतसैन्धवसाधितं  
प्रदरघ्नं रसे पाके च मधुरं कपायं गुरु शीतलं माही वातलश्च ।  
भा. पू १ भ. शाकव. । कृमिमेहघ्नं रुचमुष्णं पाके कटु लघु  
वातकरुन्ञ्च । सु. मू. ४६ अ ॥”

कुक्कुटीः—कुक्कुटीत्याकारकः स्त्रीलिङ्गवाची कुक्कुटशब्द ।  
तथा—एवं मधुकुक्कुटिका—मधुकुक्कुटीत्याकारकः शब्दः ।  
मातुलुङ्गे—मातुलुङ्गापरपर्यायवोजपूरकवृक्षे वर्तते इति शेषः । अपी-  
त्यनेन सुनिपण्णादिग्रहणम् । मधुकुक्कुटिकेत्यत्र मध्विति विशेष-  
ण्ये दूरीकृते कुक्कुटिकेत्यवशिष्यते । कुक्कुटीशब्दस्यैव कप्रत्यये  
दस्ये च कृते कुक्कुटिका संपद्यते । तथा च तयोः पर्यायत्वं संभ-

के नाम है चंगरी के पत्र समान इसके पत्र होते हैं ।  
 सानिप्राम निषण्ड भूषण पु० ८०८ में लिखा है—

“सुनिषण्ड के नाम”

सितिवार, सितिवर स्वास्तिक, सुनिषण्डक, धीवारक,  
 पित्र, पण्यक, कुक्कुट, शिखी ये सुनिषण्डक के नाम हैं ।

सुनिषण्डक के गुण—

सुनिषण्डक लघु, माही, पौष्टिक, आमिषर्धक, त्रिदोष-  
 , मेघा और रुचि को बढ़ाने वाला, दाह उररनाशक,  
 रसायन है ।

वैद्यक सार सिन्धु पु० १५१ में कहा है—

“साधर्मिकः—पु० पत्रा० । *Bombax malabarica*, syn.

*la malabarica*. स्वनामस्तथातमहातमी । गुणाः । गुण—

रुक, बलकारक, रसादिष्ट, शीत, कसैला, दुग्ध, विनश्य, धीर्ब और  
 को बढ़ाने वाला है । माही और कसैला उमके रस के ही गुण हैं ।

फूल और फल के गुण उसी के समान हैं । धी और लसक में साधा  
 उखुध फूल प्रदर को साध करता है, रस तथा पाक में मधुर, कषाय,  
 शीतल, माही तथा वातकारक है । ( भा. पू. १ अ. पाक ४ )  
 तथा प्रमेह का मासक, कृत्वा, उरण, पाक में कटु, कषु, वात और  
 को हरने वाला है । ( सु. पू. ४६ अ. )

बुबुट्टी, बुबुट्ट सार वा छ निगवावा सार है और इसी प्रकार  
 बुबुट्टस्य सार संतपूरक ( विभीष ) सुरत वा पयापयापी है ।

अचि सार ये सुनिषण्ड आदि का उदक किया है । ‘अनुबुट्टिका’  
 में ये ‘अनु’ विशेषण दरा दें तो ‘बुबुट्टिका’ संघ रसता है और  
 सार से क साधक करने पर और द्रव्य करन पर ‘बुबुट्टिका’

वति । तेन मधुकुक्कुटिकावत्कुक्कुटोशब्दस्यापि मानुजुङ्गार्यकत्वं  
कोपसिद्धमेव । तथाहि-वैद्यकराजसिन्धौ—

“कुक्कुटो—पुं । कुक्कुभपक्षिणि । तदण्डाकारकन्दे ।  
मं । स्त्री । Silk cotton tree. शात्मलिवृक्षे । रा. नि.  
व. ८ । भा. पू. ४ भ. मूत्राष्टकतैले । शितवारके । वा.  
उ. ५ अ । अकटवृक्षे । उच्चटामूले । उच्चटामहुलिङ्गी स्यात्सैवोका  
कुक्कुटो ववचित् ।” रत्ना ॥” ( २५९ ) पृष्ठे ) ।

“मधुकुक्कुटिका—( टो )—स्त्री । मानुजुङ्गवृक्षे, जम्बोरभेदे ।  
महुर इति भाषा । गुणा—‘मधुकुक्कुटिका शीता, श्लेष्मलास्य-  
प्रसादनी । रुच्या स्वादुर्गुरुः सिग्धा, वातपित्तविनाशिनो ॥  
राज. ३ प ॥” ( ३०८ पृष्ठे )

“मानुजुङ्गः—( कः ) । पुं । ( Citrus medica )  
छीलङ्गवृक्षे । हि. विजौरा । गुणाः—

‘स्थान्मानुजुङ्गः कफनातहन्ता कृमाणां जउरामयघ्नः ।

स दूपितरकविनागपित्तसन्दीपनः शूलभिकारहारी ॥”

तत्फलगुणाः—श्यासक सारुचिहर तृष्याप्लं कण्ठरोधनम् ।

दीपनं लघुरुच्यञ्च मानुजुङ्गमुदाहृतम् ॥”

( पृष्ठ ७४३ )

सुश्रुतसंहितायां ३२७ पृष्ठे—“विजौरा—

श्यासकसारुचिहरं, तृष्याप्लं कण्ठरोधनम् ।

लघुम्लं दीपनं हृद्यं, मानुजुङ्गमुदाहृतम् ॥

नष्ट हो जाता है। भतपूष के पचाववाची हा सञ्ज है। इस कारण से मधुसुकुटिका सप्त् का अर्थ विज्रीता है इसी प्रकार सुसुकुटी सप्त् का अर्थ भी विज्रीता कोष से सिद्ध है।

वैद्यक सप्त् सिन्धु में कहा है—

“कुसुकुटी—पु० । कम्बुभवक्षिति । तद्व्याकारकम्दे । म० । १ । Silk cotton tree शास्त्रनिबृक्षे । रा० नि० व० ८ । भा० पु० ५० । म० मूत्राहकनीले । जितिवारके । वा० इ० ५ अ । जलरक्षे । उच्यते । ‘उच्यते मूलिही स्यात् सैवोक्त सुसुकुटी वचनित्’ । रसा ३ ” (पृष्ठ २५९)

मधुकुसुकुटिका—( टी )—डी । मातुकिग वृक्षे, जम्बीरभेदे । इति भाषा । गुणा—मधुकुसुकुटिका शीता, दलेष्मकास्य प्रसादनी । १५१ इत्यनुक्तः सिन्ध्या, चातचित्तविनाशिनो ॥ रात्र, ३ प, ॥” (पृष्ठ ३०८)

मातुकिग—( कः ) । पु० । ( *Citrus medica* ) जर्जरा वृक्षे ६० विज्रीता । विज्रीते के गुण—

विज्रीता कफ और वात को नाश करने वाला, पेट के कीड़ों का नष्ट करने वाला, दूषित रक्त विकार मिटाने वाला है।

मातुकिग फल के गुण इस प्रकार है—

श्वास स्वासी, तथा अस्थि को नष्ट करने वाला, शृष्णा का नाशक और कण्ठ को शुद्ध करने वाला क्षपित, लघु एवं सार्थकारक है।

गुधत सारिका पु० ११०, “विज्रीता”—

मातुलिग्न श्वास, स्वासी और अस्थि को हरने वाला, शृष्णा बुझाने वाला, कण्ठ शुद्ध करने वाला, लघु लघ्वा, क्षपित तथा सार्थकारक होता है।

स्वकृत्तिका दुर्जरा तस्य, वातकृमिकफापहा ।  
स्वादु शीतं गुरु स्निग्ध, मांसमारुतपित्तजिते ॥

ननु कुक्कुटोशब्दस्य मातुलुङ्गार्थकत्वेऽपि कुक्कुटशब्दस्य तु तत्र सिद्धमिति चेदाहवृत्तिकाराशयादिति—कोपं विनाऽऽत-  
वाक्यदितोऽपि शक्तिप्रदा भवतीति । दर्शितमेव कुक्कुडशब्देन  
मातुलुङ्गापरनामत्रीनपूरकार्यबोध एव वृत्तिकारस्याशयः । तद्यथा  
'कुक्कुटमासकं' बीजपूरकम् । ( भग० आगमो० समिति  
६९१ पृष्ठे )

तथा च तदभिप्रायेण कुक्कुटोऽपि कुक्कुटशब्दोऽपि तस्मिन्  
मातुलुङ्गार्थं प्रवर्तते शक्त्यैव बोधजनको भवतीत्यर्थः । एवं च  
'कुक्कुड' शब्देन त्रिपु वनस्पत्यर्थेऽप्युपस्थितेष्वपि विशेषेणात्र कस्योप-  
योग इति दर्शयति । स्वस्तिकस्येति—मुनिपण्यकापरपर्याय-  
शितिवारशाकस्य दाहज्वरहारित्वेनात्रप्रसंगे । उपयोगेऽपि—  
उपयुक्तत्वेऽपि मांसशब्दो निरर्थकोऽर्थं शून्यत्वेनानुपपन्नः स्यादिति  
शेषः फलगर्भस्येवात्र मांसत्वेन स्वस्तिकस्य तादृशफलवत्त्वाभावात् ।  
शान्मलेः—स्वनामख्यातमहातरोः फलवत्त्वेऽपि मांसविशिष्टफल-  
सद्भावेऽपि । अत्र-अभिन्नप्रकरणे तस्य—शात्मलिफलस्य  
नोपयुक्तता—नोपयोगो भवति पित्तशहाद्यनिवारकत्वान् ॥  
मातुलुङ्गेतु—बीजपूरककृते मांसात्मक-गर्भसद्भावात्तस्य च  
विचारिदोषनिवारकत्वेन दर्शितवान् । सर्वथा—सर्व प्रकारेण,  
सार्थवयं साकृत्यम् । पूर्वोक्तप्रकाराभ्यामस्य विशेषतोपदर्शनार्थं



इसकी छाल तिक्त और कठिनता से पचने वाली होती है। वह वात, कृमि और कृक को नष्ट करती है। उसका  
 ५५. स्वादु, शीतल, गुरु, सिग्ध, वायु और पित्त को जीतने  
 है।

सर्क—कुकुटो नाम्द का अर्थ बिजौरा हुआ, लेकिन यह सिद्ध नहीं  
 कि कुकुट नाम्द का अर्थ भी बिजौरा है।

समाधान—कोर के बिना भी भास-वायव आदि से नाम्दार्थ का  
 है। यह पहले ही दिखाया जा चुका है कि कुकुट नाम्द से  
 साकार का भासव बिजौरा से हो है, जिसका दूसरा नाम मातुलुङ्ग भी  
 है। यह इस प्रकार कुकुट मौसक—बीजपूरकम् ( भग० भागयो०  
 १९१ पृष्ठ )

इस प्रकार टीकाकार के मत के अनुसार कुकुट नाम्द भी बीजपूर  
 वाचक है। यहाँ कुकुट नाम्द से तीन वनस्पतियों का अर्थ होता है,  
 से इस प्रकार से विशेष रूप से जिसको उपयोगिता है, यह बातें  
 मुनिपण्णा नामक चित्तिवार शाक शाह-उत्तर का नामक ज्ञाता है  
 यह इस प्रसंग में उपयोगी है, तथापि यदि यह अर्थ दिया  
 तो मांस नाम्द अर्थ हो जाता है। क्योंकि कछ के गूदे को यहाँ  
 मांस नाम्द से कहा है मगर चित्तिवार के कछ जैसे (गूरेदा) नहीं होने  
 अर्थ नाम्दालि (सेमक) है। सेमक के कछ में गूरा भी होता है  
 यह इस प्रकरण में उपयोगी नहीं है क्योंकि यह पित्त-दाह आदि  
 का नाशक नहीं होता। अब यह गया बिजौरा, सो उसके कर्णों में गूरा  
 भी होता है। और वह पित्त आदि रोगों का निवारक भी करता है,  
 इस कारण यही सब प्रकार से उपयुक्त है। यही कारण है कि प्रकरण के

तु शब्दः । अतः—अस्मात्कारणान् तदाश्रयः—मातुलुङ्गरूप-  
तृतीयार्थस्यैवाश्रयः कृता द्वार्यां विहाय तृतीयोऽर्थः समाहृतः  
प्रकरणानुरोधेनेति भावः ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

मांसशब्दाद्यो निकृष्य ।—

मांसशब्दस्य शक्तिस्तु, पिएडीभूते रसे मत्ता ।

फलगर्भोऽपि तद्रूपो, दृश्यते प्राणिमांससन् ॥ ४८ ॥

त्वद्भ्रमांमकेसराणां च, लक्षणानि पृथक् पृथक् ।

वाग्भटे वैद्यके ग्रन्थे, दर्शितानि गुणैः सह ॥ ४९ ॥

मांसशब्दस्येतिः—‘कुम्कुडमंसए’ इत्यत्र ‘मंसए’ इति

शब्दस्य ध्याया मांसकमिति पुल्लिङ्गस्तु प्राकृतत्वान् । कप्रत्ययः  
स्वार्थिकः । मांसशब्दस्य पिएडीभूते रसे रसपिएडे रक्तज-  
तृतीयधातौ वा शक्तिः प्राणिशरीरे यथा रसपिएडीभावो भवति  
तथा वृक्षफलादावपि रसपिएडीभावो भवत्येवात् आह तद्रूपः  
रसपिएडरूपः । प्राणिमांसफलगर्भयोः क्वचिद्वर्णेनापि सादृश्यं  
दृश्यते । ततो मांसशब्देन फलगर्भोऽपि गृह्यते । तदुक्तं  
प्रज्ञापनायाम्—“घेठं मंसकडाहं एयाइं ह्वंति एगजीवस्स । वृन्तं  
समंसकटाहं ति । स मांसं सगिरं तथा कटाहं एतानि त्रीण्येकस्य  
जीवस्य भवन्ति एकजीवात्मकान्येतानि त्रीणि भवन्तोत्यर्थः ।  
( पन्नवणा, बाबु. पद. १ पृ. ४० ) ॥” एवं वाग्भटे ( सू. स्था-  
श्र. ६. श्लोक १२५—१३१ )—

मातुलुङ्गस्य त्वद्भ्रमांमकेसराणां पृथगपयोगदर्शनात् पृथगेव मुरानाह—  
त्वकृत्तिककटुका स्तिन्वा मातुलुङ्गस्य वाताजित् ।

बृहस्पतिं मधुरं मांसं वातपित्तहरं गुरु ।

ोष से कुरकुर शब्द के तीन वनस्पति-भयों में से पूर्वोक्त दो को  
: कर तोसरे विजौरे भयं का आशय लिया है ॥ ४५-४६-४७ ॥

मांस शब्द का अर्थ—

रस का विण्ड, मांस शब्द का अर्थ है । फल का गर्भ (गूदा  
गेरी) भी प्राणी के मांस की तरह उसी प्रकार का देया  
जाता है ॥ ४८ ॥

वाग्भट्ट नामक वैद्यक ग्रंथ में, लवचा, मांस, और केसर के लक्षण,  
उनके गुणों के साथ, जुड़े-जुड़े बनाये हैं ।

'बुक्कुरमंसप्' पर से 'मंसप्' इय प्राकृत शब्द को संस्कृत शब्द  
'मांसकम्' होता है । स्वार्य में 'क' परबध हुआ है । मांस का अर्थ है  
रस का विण्ड अर्थात् रस से उत्पन्न होने वाले तोसरी धातु । उसे  
प्राणी के शरीर में रस का विण्ड होता है उसी प्रकार फल वर्ग में भी  
होता है, इत्यस्य मांस को रस-विण्ड रूप कहा है । कहीं-कहीं प्राणी  
के मांस और फल के गूदे में रंग की भी समानता देखी जाती है, इत्यस्य  
मांस शब्द से फल का गूदा अर्थ भी लिया जाता है । दशापन मूत्र में  
कहा भी है—'वेदं मांसकटाहं इयाहं इवति एगजीरस्व ।' अर्थात्  
एक जीव के दूध, मांस सहित गूदा सहित, और बटाहं, ये तीन होते  
हैं, अर्थात् ये तीनों एक जीव रूप हैं । ( पञ्चतन्त्र वाच. पद १ पृ. ४० )  
इसी प्रकार वाग्भट्ट में ( देखिये मू. रथा. अ. ४. श्लोक १२५-१२६ )  
विजौरे की लवचा, मांस और केसर का दूध-दूध- उपयोग देखा जाने  
से उनके गुण भी दूध-दूध- कहे हैं—

मातुलिंग का शूल तिक्त, कडुषी, स्निग्ध, तथा पात-  
नाशक है-। मातुलिंग का गूदा सुहृण, मधुर, पातपित्तनाशक  
एव गुरु है । उसकी केशर लघु है, आस सासी, से हुवा रोगों





गतदिननिष्पादितः । तस्या रेवतीगृह्णया गृहे विद्यत इति शेषः ।  
 तं-बीजपूरकगर्भम् । आनय-स्वमिति शेषः ततः-प्रथमवाक्या-  
 न्तरं द्वितीयवाक्येन चोर जिनः सिंहं प्रति इत्यवकू-इत्यमवद-  
 दिति—“अत्थि से अत्रे पारियासिण् मञ्जारकडण् कुक्कुड मंसण्  
 तमाहराहि” भग० १५; १, पृ० ६८७ इत्येनद् द्वितीयवाक्य-  
 स्यायं समुदायार्थं इति ॥ ५१ ॥

दोषनिराकरणमाह—

अस्मिन्नर्थे न काप्यस्त्य-नुपपत्तिर्न दूषणम् ।

न चागमाविरोधोऽपि. सर्वं संगच्छते ततः ॥ ५२ ॥

अस्मिन्निति—मांसार्थे 'दुवे सरोरकडण्' इत्येतेषां त्रयाणां  
 शब्दानामन्वययोग्यतानुपपत्तिः नरकादिगतिप्राप्तिः स्वर्गाद्यप्राप्तिश्च  
 दूषणं मांसाहारनिषेधकानामागमवाक्यानां विरोधश्च । इत्येवं  
 ये ये दोषा मांसार्थे संभवन्ति तन्मध्याद्वनस्पत्यर्थे नैकोपि दोषः  
 संभवति । ततस्तदर्थे सर्वं संगच्छते सर्वथापि संगतिरस्ति । न  
 मनागप्यसंगतिरनुपपत्तिर्वास्तीति भावः ॥ ५२ ॥

उपसंहार —

मांसार्थपरिहारेण, वनस्पत्यर्थसाधनात् ।

रेवतीदत्तदानस्य, पूर्णशुद्धिर्निनिश्चिता ॥ ५३ ॥

मांसार्थपरिहारेणेति—रेवतीदत्तदाने याथातथ्यं परोक्षितुं  
 प्रारब्धेऽस्मिन्निषन्धे पूर्वापरसम्यन्धपूर्वकं शब्दार्थपर्यालोचनायां  
 क्रियमाणायां मांसार्थनिराकरणेन वनस्पत्यर्थसाधनेन च रेवतीदत्त-  
 दानं नाशुद्धं किन्तु पूर्णशुद्धमिति सप्रमाणं निश्चितमिति ॥ ५३ ॥



कव निर्दिष्टतोभावाद्—

आगमोद्धारसंस्थायाः, मिलितानां मभासदाम् ।  
परस्परपरिशोण, तातोऽप्यपर्यन्तिरनयः ॥ ५४ ॥

आगमोद्धारसंस्थाया इति—भां अतमेराख्यरत्ने मानु-  
सम्मेलनप्रमद्रे शाम्प्रपयो नोचनकृते स्थापिता याऽऽगमोद्धारममि-  
स्तस्याः सभासदः प्रतिनिधियों गत्युराभ्याययुरानार्यपूज्यश्रमोत्त-  
श्रपिप्रभृतयः । ये मंत्रति जयपुरपराने विराजन्ते शाम्प्रपयोतोच-  
नार्थं मिलितानां तेषां परस्परपरिशोण—परस्परं विदितशाम्प्रपयो  
लोचनेन अयं—प्रकृतनिश्चयगतार्थनिर्णयः कृतः साधित  
इत्यर्थः ॥ ५४ ॥ प्रशस्तिः

खनिध्यंकधरावर्षे, माघशुक्लाष्टमीतिथौ ।  
भौमे भारतविख्याते, जयपुराख्यपत्तने ॥ ५५ ॥

पूज्यगुलावचन्द्राङ्घ्रधम्बुजपरागसेविना ।  
रत्नेन्दुना निबन्धोऽयं, निर्मितो मुक्तयेऽस्तु नः ॥ ५६ ॥

खनिध्यंकधरावर्षे इति—खं शून्यं निधिर्नैव श्रद्धो नव  
धरा चैका । श्रद्धानां वामतो गतिरिति १९९० मितं वर्षे—विक्र-  
माब्दे माघमासशुक्लपक्षस्याष्टमीतिथौ भौमे मंगलवासरे भारतवर्षे-  
प्रसिद्धे जयपुराख्ये पत्तने लिम्बडीसम्प्रदायस्याचार्यवरस्य पूज्यभी-  
गुलावचन्द्रजित्स्वामिनश्चरणकमलरजःसेवकेन रत्नचन्द्रमुनिना  
विरचितोऽयं निबन्धो नोऽस्माकं सर्वेषां च मुक्तये कल्याणायस्तु  
भवत्विति लेखकभावना ॥ ५५—५६ ॥

नभोऽङ्गनिधिभूवर्षे, माघकृष्णदलेशनौ ।  
पञ्चम्य-मृजुटीकेयं, स्वोपज्ञं पूर्णतां गता ॥ ? ॥



निस प्रकार निश्चित हुए, सो करते हैं—

भागमोदर समिति के एकत्रित हुए सभासदों के परस्पर  
१२ से यह अर्थ निश्चित हुआ है ॥ ५४ ॥

भजमेर नगर में साधुसम्मेलन के अवसर पर छात्रों की पर्यालोचना  
के लिए भागमोदर समिति स्थापित हुई थी । उसके सभासद  
गणो, श्री आत्मारामजी उपाध्याय, श्री काशीरामजी युवा-  
एवं श्री असोटक कविजी, आदि को कि इस समय जयपुर नगर  
विराजमान है, परस्पर मिले भीर उन्होंने छात्र की पर्यालोचना द्वारा  
निर्णय किया है ॥ ५४ ॥

विक्रम संवत् १९१० के धरो छे ( १९१० ) की माघ  
७ के शुक्ल पक्ष की अष्टमी, मंगलवार के दिन, भारतवर्ष  
प्रसिद्ध जयपुर नगर में, सेवक रत्नचन्द्र मुनि ने यह निबंध  
१। यह निबंध हमें और समस्त प्राणियों को कल्याणकारी  
२। यह लेखक की भावना है ॥ ५५ ५६ ॥

### टीकाधार की प्रशंति

संवत् १९१० के माघ शुक्ल पक्ष की अष्टमी के दिन यह श्रीयज्ञ सारक टीका  
हुई ॥ ५७ ॥

० अर्थों की बाध गति होती है, अर्थात् ० १ १ १ को उलटने से  
० हो जाता है ।

बिजली से चलनेवाला अजमेर में बहुत बड़ा प्रेस खुल गया

## आदर्श प्रेस, अजमेर

उमदा काम, समय की पावन्दी और मुनासिब रेट  
हमारे खास विशेषताएँ हैं ।

संस्कृत, हिन्दी, उर्दू व अंग्रेजी का सब तरह का काम हमारे  
यहाँ बहुत सुन्दरता से किया जाता है । प्रक-संग्रहण  
का भी प्रबंध है, कागज़ का स्टॉक भी रहता है ।

किताबों व पत्र पत्रिकाओं के छापने का खास प्रबन्ध है ।

जैनी भाइयों से प्रार्थना है कि वे अपनी छपाई का सब काम अपने  
इस जैन प्रेस में ही भेजने की कृपा करें ।

निवेदक—श्रीलाल लूणिया, सयाडक-आदर्श प्रेस.

पता—आदर्श प्रेस, अजमेर.

(केसरगंज डाकखाने के पास)

## आदर्श पुस्तक-भण्डार

आदर्श प्रेस के मकान में ही यह पुस्तक भण्डार खुला  
है । हिन्दुस्थान भर में मिलनेवाली सब प्रकार की हिन्दी  
की उत्तमोत्तम पुस्तकें हमारे यहाँ मिलती हैं । सत्वा-साहित्य  
मण्डल के राजपूताना प्रान्त के हम सोल एजन्ट हैं ।  
अश्लील या मनुष्य-जीवन को गिरानेवाली पुस्तकें हम नहीं  
बेचते । बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मंगाएँ ।

पता—आदर्श पुस्तक-भण्डार, केसरगंज, अजमेर.



कथं निश्चितोभयवाह—

आगमोद्धारसंस्थायाः, मिलितानां सभासदाम् ।

परस्परमविशेषण, जातोऽयमर्थनिश्चयः ॥ ५४ ॥

आगमोद्धारसंस्थाया इति—श्री अजमेराख्यपत्तने साधु-  
सम्मेलनप्रसङ्गे शास्त्रपर्यालोचनकृते स्थापिता याऽऽगमोद्धारसमिति-  
स्तस्याः सभासदः प्रतिनिधियो गण्युपाध्याययुवाचार्यपूज्यअमोलख-  
श्रुतिप्रभृतयः । ये संप्रति जयपुरपत्तने विराजन्ते शास्त्रपर्यालोच-  
नार्थं मिलितानां तेषां परस्परविशेषण—परस्परं विहितशास्त्रपर्या  
लोचनेन अर्थं—प्रकृतनिबन्धगतार्थनिर्णयः कृतः साधित  
इत्यर्थः ॥ ५४ ॥ प्रशंसितः

स्वनिर्घ्यंकधरावर्षे, माघशुक्लाष्टमीतिथौ ।

भौमे भारतविख्याते, जयपुराख्यपत्तने ॥ ५५ ॥

पूज्यगुलाबचन्द्राङ्घ्रियम्बुजपरागसेविना ।

रत्नेन्दुना निबन्धोऽयं, निर्मितो मुक्तयेऽस्तु नः ॥ ५६ ॥

स्वनिर्घ्यंकधरावर्षे इति—स्वं शून्यं निधिर्नैव अद्भो नव  
धरा चैका । अद्भानां वामतो गतिरिति १९९० मिते वर्षे-विक्र-  
माब्दे माघमासशुक्लपक्षस्याष्टमीतिथौ भौमे मंगलवासरे भारतवर्ष-  
प्रसिद्धे जयपुराख्ये पत्तने लिम्बडीसम्प्रदायस्याचार्यवरस्य पूज्यभी-  
गुलाबचन्द्रजित्स्वामिनधरणकमलरजःसेवकेन रत्नचन्द्रमुनिना  
विरचितोऽयं निबन्धो नोऽस्माकं सर्वेषां च मुक्तये कल्याणायस्तु  
भवत्विति ज्ञेयकभावना ॥ ५५—५६ ॥

नभोऽङ्घ्रिनिधिभूवर्षे, माघकृष्णदशमि ।

पद्मम्य. मृजुटीक्यं, स्वोपज्ञं पूर्णतां गता ॥ १ ॥

सिद्ध प्रकार निश्चित हुआ, सो करते हैं—

आगमोद्धार समिति के एकत्रित हुए सभासदों के परस्पर से यह अर्थ निश्चित हुआ है ॥ ५४ ॥

अजमेर नगर में साधुसम्मेलन के अवसर पर भाष्यों की पर्यालोचना के लिए आगमोद्धार समिति स्थापित हुई थी। उसके सभासद गणों, श्री आगमारामजी व पाण्ड्याय, श्री काशीरामजी पुष्पाय भी अमोलक कवित्री, भादि जो कि इस समय जयपुर नगर विराजमान हैं, परस्पर मिले और उन्होंने साछ की पर्यालोचना द्वारा निर्णय किया है ॥ ५४ ॥

विक्रम संम्वत् १९१० के धरा ( १९१० ) की माघ के शुक्ल पक्ष की अष्टमी, मंगलवार के दिन, भारतवर्ष प्रसिद्ध जयपुर नगर में, संवत्क रत्नचन्द्र मुनि ने यह निबंध रचा। यह निबंध हमें और समस्त प्राणियों को कल्याणकारी यह लेखक की भावना है ॥ ५५ ५६ ॥

### टीकाकार की प्रशस्ति

संवत् १९१० में के माघ शुक्ल पंचमी के दिन यह रसोयज्ञ सरल टीका हुई ॥ १ ॥

विजली से चलनेवाला अजमेर में बहुत बड़ा प्रेस खुल गया

## आदर्श प्रेस, अजमेर

उमदा काम, समय की पावन्दी और मुनासिब रेट  
हमारे खास विशेषताएँ हैं ।

संस्कृत, हिन्दी, उर्दू व अंग्रेजी का सब तरह का काम हमारे  
यहाँ बहुत सुन्दरता से किया जाता है । प्रूफ-संशोधन  
का भी प्रबंध है, कागज़ का स्टॉक भी रहता है ।

किताबों व पत्र पत्रिकाओं के छापने का खास प्रबन्ध है ।

जैनी माइनों से प्रार्थना है कि वे अपनी छपाई का सब काम अपने  
इस जैन प्रेस में ही भेजने की कृपा करें ।

निवेशक—जीतमल लूणिया, सबाबक-भादरा प्रेस.

पता—आदर्श प्रेस, अजमेर.

(केसरगञ्ज बाकखाने के पास)

## आदर्श पुस्तक-भण्डार

आदर्श प्रेस के मकान में ही यह पुस्तक भण्डार खुला  
है । हिन्दुस्थान भर में मिलनेवाली सब प्रकार की हिन्दी  
की उत्तमोत्तम पुस्तकें हमारे यहाँ मिलती हैं । सस्ता-साहित्य  
मण्डल के राजपूताना प्रान्त के हम सोल एजन्ट हैं ।  
अश्लील या मनुष्य-जीवन को गिरानेवाली पुस्तकें हम नहीं  
बेचते । बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मँगाइए ।

पता—आदर्श पुस्तक-भण्डार, केसरगञ्ज, अजमेर.

# खेतोदान समालोचना

की

## प्रस्तावना

( ४०—सप्तमस्कन्धा परित्त मुनिभा रत्नचन्द्रिका भाग ३ )

( जैन प्रकाशक के अध्यापन महाशयोंक में हातावधानी प०. मुनिभा रत्नचन्द्रजी म. ने खेतोदान समालोचना नामक निबन्ध संस्कृत में प्रकाशित कराया था । उसकी आलोचना प. अजितकुमारजी ने जैन मित्र में की थी । जिसका यह उत्तर है । अर्थात् होता कि यह उत्तर जैनमित्र में ही प्रकाशित जिसमें जैनमित्र के पाठक दोनों तरफ का बाँटो को समझ सकते । परन्तु वेद है कि यह लेख जैनमित्र के पाठक भेजा भी गया, लेकिन जैनमित्र ने इसके प्रकाशने की उदारता नहीं दिखलाई । जैनमित्र को अपनी इस निम्नदर्शिका क्याल अवश्य रखना था । सोर ! इसमें तो मुनिभा के लेखका महत्त्वही पड़ता है । यह लेख और पत्रों में भी प्रकाशित हुआ है परन्तु इसका मूल लेख जैन प्रकाशक में ही प्रकाशित था इस लिये यह लेख भी यहाँ दिया जाता है । अ. )

दिगम्बर सम्प्रदाय की ओर में प्रकाशित होने वाले "जैन मित्र" नाम के साप्ताहिक पत्र में ता० १ अगस्त वर्ष १६ के अंक ४१ में दिगम्बर सम्प्रदाय के पण्डित श्री अजितकुमारजी शास्त्री ने "खेतोदान समालोचना" नामक संस्कृत के निबन्ध की समालोचना करते हुये संस्कृत निबन्ध के उत्तर की मर्यादा को उद्धरण

कर श्वेताम्बर दिगम्बर की साम्प्रदायिक चर्चा में उतर गये हैं। प्रकृत निबंध का उद्देश्य तो केवल यह है कि रेवती गाथापत्रोने सिंह अणुगार को दान दिया है; वह शुद्ध है, किवा अशुद्ध ? कपोत, मार्जार, कुक्कुट, मांस आदि शब्दों का यहां पर वास्तविक अर्थ पक्षी है या वनस्पति ? महावीर स्वामी ने मांसाहार किया या नहीं ? इत्यादि आक्षेप अनेकों की आंर से हो रहे हैं। उनका समाधान करने के लिये ही उक्त निबंध की योजना की गई है। इसी लिये इस निबंध का नाम "रेवतीदान समालोचना" रक्खा गया है, न कि गोशालक कथा समालोचना।

पंडितजी ने उपर्युक्त ध्येय के ऊपर यदि लक्ष दिया होता तो श्वेतांबर दिगम्बर की अप्रासंगिक ( साम्प्रदायिक ) चर्चा में नहीं उतरते। क्योंकि ऐसी चर्चाओं का आज तक अन्त नहीं हुआ। ऐसी चर्चाओं में बेचल समय के अव्यय के अतिरिक्त कोई लाभ नहीं बल्कि उल्टा अन्दर ही अन्दर विज्ञेय बढ़ने के साथ साथ ईषां द्वेष की वृद्धि होता है। वर्तमान समय वैमनाथ बढ़ाने का नहीं है, प्रत्युत परस्पर ऐश्य तथा प्रेम बढ़ाने का है। दूसरी बात यह है कि, जिस सम्प्रदाय की समीक्षा या खंडन करना हो तो प्रथम उस सम्प्रदाय की परिभाषा में पूर्ण - जानकारों होना अन्यावरणक है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय की समीक्षा व खंडन श्वेतांबर सम्प्रदाय की परिभाषा से ही हो सकता है, न कि दिगम्बर सम्प्रदाय की परिभाषा या अन्य दर्शन की परिभाषा से। इसी तरह में दिगंबर सम्प्रदाय का समीक्षा व खंडन दिगंबर सम्प्रदाय की परिभाषा से ही हो सकता है, न कि श्वेतांबर सम्प्रदाय की परिभाषा या अन्य दर्शन की परिभाषा से। समीक्षा करनेवाले





जाता है। दृष्टी आशंका में पंडितजी लिखते हैं कि "सबसे बड़ी आपत्ति इस विषय में यह है कि भगवान् महावीर स्वामी ने अपने योग्य भोजन लाने के लिये सिंह साधु को जिस रेवतीगाथा पत्र के घर भेजा, वह मद्य पीने वाली तथा मांस भक्षण करनेवाली थी। उपासक दशांग सूत्र के आठवें अध्याय के २४०-२४२-२४४ वें सूत्र के अनुसार उसका मलिन आचरण इस योग्य सिद्ध नहीं होता कि उसके घर साधारण गृहस्थ-जैन-के स्नाने योग्य भी आहार मिल सके। उसने जब विप-शस्त्रों द्वारा अपनी १२ सौतों को मार दिया था तथा मद्य, मांस, मधु खान पान में लीन रहती थी। श्रेणिक राजा की वध निषेध की आज्ञा रहने पर भी वह अपने पिता के घर से बछड़े मरवाकर मँगा लिया करती थी। तब उसके घर कबूतर मुर्गे का मांस होना सरल संभव है। यदि वह मांस भक्षण न करती होती तब तो कपोत, कुक्कुट शब्द का अर्थ वनस्पति किसी प्रकार किया भी जाता। मांस लोलुपी के घर सीधे सरल मांस आदि शब्दों का अर्थ वनस्पति रूप बरना ठीक नहीं।"

इसमें पंडितजी ने सिंह मुनि को दान देनेवाली रेवती को उपासक दशा में वर्णन की हुई रेवती मान ली है। यह पंडितजी की बड़ी भूल है। पंडितजी का कर्तव्य था कि दूसरों की त्रुटि को दिखाने के पहिले रेवती से संयंत्र रखने वाले दोनों पाठों को भली भाँति विचारते हुये पूर्वापर सम्बन्ध को अच्छा तरह से हृदयंगम कर लें जिससे कि यह अज्ञानान्धकारावृत्त न रहता कि दोनों पाठों में आई हुई रेवती एक नहीं बल्कि पृथक् २ हैं।

परंतु न मालूम पंडितजी ने बिना देखे भाले किस प्रकार ये धारांकाये उपस्थित कर दी । अस्तु ।

वस्तु स्थिति इस प्रकार है कि उपासक दशा के आठवें अध्याय में जिस रेवती का वर्णन आया है वह, राजगृही की रहने वाली महाशतकजी की पत्नी है । उसका पाठ निम्नलिखित प्रकार से है—

“वत्थणं रायगिहे महासय्य नामं गाहावई परिवसई । तम्म महासयस्स रेवई पामोक्खाओ तेरस भागियाओ होत्था ।” और भी भगवती सूत्र में जिस रेवती का वर्णन आया है उसका पाठ इस प्रकार है—

“गच्छद्दण तुमं सीहा ! मोंदय माम नगरं रेवतीए गाहा-  
वठिणोए गिहे”

( १ ) उपासक दशा में वर्णित रेवती राजगृही की रहने वाली महाशतकजी की स्त्री परवन्त्र है और ( २ ) भगवतीजी सूत्र में वर्णन की हुई रेवती मेदिक प्रामनामा नगर की रहने वाली स्वतंत्र अर्थात् गृह स्वामिनी है । उर्युक्त दोनों रेवती पृथक् २ प्रामों की रहने वाली होने के कारण पृथक् २ ही हैं । उपासक दशा सूत्र में वर्णन की हुई “रेवती” मांसाहारिणी, मूर, हिसक और अध-  
मिणी है, जिसको पंडितजी भी स्वीकार करते हैं । परन्तु भगवती सूत्र में वर्णन की हुई रेवती श्री भगवान महाबोर स्वामों के चरणों में भक्तिभाव रखने वाली और सिद्ध अणुगार की दान देनेवाली परमेश्वरी है । उपासक दशा सूत्र में जिस रेवती का वर्णन आया है वह मर कर नरक में गई है और सिद्ध अणुगार की दान देनेवाली जिस रेवती का वर्णन भगवती सूत्र में आया है

वह यहाँ से काल करके स्वर्ग में जानेवाली बताई है। इन दोनों के सूत्र पाठ इस प्रकार से हैं।

“तएणं सा रेवइ गाहावइणी अंतोसत्तरत्तस्स अलसएणं वाहिणा अभिभूया अट्ट दुहट्ट वसट्टा कालमा से कालंकिचा इमोसं रयणप्पभाए पुढवीए लोलूपच्चूए नए चवरासोई वाससइ ठिइएसु नेरइएसुनरइएत्ताए उववएणा” पद्दा०८:२७।

“तएणं तीए रेवतीए गाहावतिणीए तेणं दब्ब सुद्वेणं जाव दाणेणं सांहे अणगारे पडिलाभिए समाणेदेवाउए निदब्धे जहा विजयास जाव जम्म जीवियफले रेवतीए गाहा वतिणीए।”

भग १५-१०

इन दोनों पाठों से वाचक वर्ग तथा परिहृतजी अच्छी तरह से समझ गये होंगे कि, उपासक दशा सूत्र में वर्णन की हुई रेवती ने देवता का आयुष्य बांधा और अपना जन्म सफल किया। इससे यह भी आशा की जा सकती है, कि अब परिहृतजी को भी दोनों रेवतियों को पृथक् २ समझने के कारण अपनी मोटी आपत्ति दूर करने में देर न लगेगी। आगे परिहृतजी लिखते हैं कि, यदि यह मांस भक्षण न करतो होता तब तो कपोव, कुम्कुट शब्दों का अर्थ वनस्पति रूप किसी प्रकार किया जाता। इस लेख से यह तो भली भाँति विदित होता है, कि इन शब्दों का वनस्पति अर्थ होना तो परिहृतजी को भी मान्य है। अब विचारणीय यह है कि, वहाँ वनस्पति अर्थ है या नहीं। इसका समाधान अभी लिखित है कि देवता का आयुष्य बांधने वाली भगवती सूत्र ने वर्णन की हुई रेवती मांसाहार करने वाली नहीं, यह तो दो और दो चार नैसी बात है। क्योंकि श्वेताम्बर सिद्धांतों में

सम्पत्त में नरक का आनु बाधना माना है, धर्मदत्त मृत्यु का  
 होने का दुई देवता का देवायुष बाधना कथित है अतः सम्पत्त  
 न सम्पत्त होना यह किमी प्रकार भी नहीं हो सकता ।

सातवीं आराधना में पण्डितजी लिखते हैं कि परिष्कारित  
 (को) शाक भोजन दूधित एव अन्नस्य बनलाया है इत्यादि—

रंजाम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों में दार्शन अन्नस्य  
 एवं गंध है । ऊहों में बासी शाक तथा अन्नादिको किमी ने भी  
 पन्थ नहीं माना, (देखिये दिगम्बरों पण्डित दील्लगमजी कृत  
 इन्फोर्पो नाम की पुस्तक ) इसमें दार्शन अन्नस्यो के नाम इस  
 प्रकार गिनाए गए हैं ।

- १ कोला, २ पौत्र वना, ३ निशि भोजन, ४ बहु बीजा
- ५ बेण्ड, ६ मीधाखा, ७ बड, ८ पौपल, ९ ऊमर, १० कुतु-
- १, ११ पाकर जो फल होय, १२ अज्राय ॥ १३ कन्दमूल,
- १४ माटो, १५ विप, १६ आमिर, १७ मधु, १८ मारुन अरु,
- १९ मदिरा पान ॥ फन, २० तुपद्, २१ तुपार, २२ पत्रितरस,
- ३ शिनमठ दार्शन बरवार ॥

इन दार्शन अन्नस्यो में बासी शाक तथा अन्नदि का कहीं  
 जक नहीं है । यदि पलित रस शब्द से बासी अन्नादि महसु  
 कर लिया जाय तो यह ठीक नहीं । क्योंकि इसका अर्थ यह है  
 कि, जिम वस्तु से वर्णगन्ध रस स्पर्श बदल गये हों वानो सह  
 गया हो वह अन्नस्य है । चाहे वह रात बासी हो या उसी दिन  
 का बना हुआ क्यों न हो, यह रसविक्रिया श्रुतु परत्वेन शूथक २  
 होती है । मीप्प श्रुतु में जो वस्तु एक रात्रि से बिगड जाती है  
 वही शरद श्रुतु में दो दिन तक नहीं बिगडती, और वर्षा श्रुतु

में वही प्रातः काल से शाम तक बिगड़े बिना नहीं रहती, इस लिये इसमें समय का नियम नहीं हो सकता। अभक्ष्यता में केवल यह देखना योग्य है कि रस चलित हुआ है या नहीं ? यदि रस चलित हो गया है तो श्वेतान्वर और दिग्म्बर दोनों आम्नायों में अभक्ष्य है। यदि रस चलित नहीं हुआ है तो अभक्ष्य नहीं। इस प्रमाण से अब यह भी प्रकट हो गया होगा कि दोनों आम्नाय केवल वासी अन्नादि को अभक्ष्य नहीं ठहराते, प्रत्युत चलित रस वाली वस्तु को अभक्ष्य ठहराते हैं। तो रेवती को यहराई हुई वासी वस्तु चलित रस न होने से आदेय है और उर्सा का सिंह मुनिने दान लिया है। इसमें किसी प्रकार का दोष नहीं होता। आठवीं आशंका में परिद्धतज्ञो लिखते हैं कि भगवती सूत्र एक गगमय है, उसमें पगों के समान अक्षर संख्यापूर्ण करने की कोई कठिनाई नहीं थी, जो मन्थकार को कुष्माण्ड, बोजपूरक मरीच्ये सरल वनस्पति सूयक शब्द छोड़कर कुम्कुट, कपोत सरीखे पक्षी बाधक शब्द लिखने पड़े—

इसका उत्तर यह है कि, कितनेक शब्द ऐसे हैं जो कि देशाचार के अनुसार रुढ़ि गठ होते हुए भी कितने ही अर्थों के प्रतिपादक होते हैं। जैसे कि “सूया” शब्द शुद्धपक्षी (तोता) के अर्थ में प्रयुक्त होता हुआ भी रुढ़ि को तरह ही सूया नामक शाक के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। सूया शाक के जो पात्रक शाक के साथ प्रायः बनाया जाता है, उसको बेबनेशले पुकारते हैं कि सो “गूया पालक” उससमय प्रादिक शोध ही यह समझ जाते हैं कि सूया का साग बेबनेशला पुकारता है। न कि सूया



मालूम हो जायगा और वृत्ति के आशय समझने में भी किस प्रकार की अड़चन प्रतीत न होगी ।

समालोचना के दूसरे पैराग्राफ में पंडितजी ने लिखा है कि “किन्तु उसके पर मार्जार के लिये जो वासी ( रातभर रखवा हुआ ) कुम्हट मांस है इत्यादि ।”

इसमें मार्जार के लिए यह चतुर्थी विभक्ति का अर्थ पंडितजी ने कहाँ से लिया । रेवतीदान समालोचना में तो कहाँ भी मार्जार के लिए वासी रखवा हुआ ऐसा अर्थ नहीं किया ! इस प्रकार स्वयम् मनः कल्पित अर्थ लिखने की पंडितजी के लिए क्या आवश्यकता प्रतीत हुई ? वास्तव में तो टीका में ही बताया गया है कि, यह शब्दार्थ मात्र है भावार्थ आगे स्पष्ट होगा । यदि पंडितजी को समालोचना हो करना थी तो प्रथम निबन्ध में लिखा हुआ उक्त का निरिषत भावार्थ देखने के परचान् समालोचना करना चाहिये था । अपूर्ण समालोचना करके उक्त वाक्य का विपरीत अर्थ पर पाठकों को शंकाशंका बनाने का प्रयत्न नहीं करना था । मार्जार और कडए इन शब्दों का अर्थ रेवतीदान समालोचना के व्याख्यान में और तैनालीसमें श्लोक में स्पष्ट दिखजा दिया गया है । पाठक वर्ग तथा पंडितजी उन अर्थ को बड़ा से देख ले और उमी के अनुसार अनुर्थी समाप्त के स्थान पर यदि तृतीया तत्पुनः अर्थानुसन्धान करें तो श्रेष्ठ है ।

( 'इन प्रकाश' में उद्धृत )



# श्री जैन गुरुकुल व्यावर का निवेदन

यदि आप व्यवहारिक, धार्मिक एवं औद्योगिक शिक्षा के द्वाारा अपने पुत्र को सहाय, धर्म प्रेमी एवं स्वाभ्युत्थी बनाना चाहते हैं तो—

## अपने बच्चों को गुरुकुल में भेजिये

प्रवेश की योग्यता—हिन्दी ३ या गुजराती ४ किताब पढ़े हुए, ८ से ११ वर्ष की उम्र तक के, निरोग, बुद्धिमान बच्चे किसी धान्य या जाति के हों वे गुरुकुल में ७ वर्ष के लिए प्रविष्ट हो सकेंगे। मासिक रु० १०), ७), ५) यथाशक्ति भोजन स्वर्च दंकर या मी भर्ती करा सकेंगे।

## शिक्षण क्या २ मिलेगा ?

भाषा ज्ञान—हिन्दी, गुजराती, इंग्लिश, संस्कृत, प्राकृतदि।

बौद्धिक कर्ष्य—सम्भाषन कला, वक्त्र, व्यापारिक शिक्षा, संगीतदि।

औद्योगिक—सिलाई, धापाखाना, कारनिडग, हांजिवरी आदि।

## आपका कर्त्तव्य

गुरुकुल को हर प्रकार सहायता देना, मधान बनवा देना, रखायी कोष बढ़ाना, अनुष्ठानिकों का स्वर्च देना, और अपने बच्चों को गुरुकुल में भेजना आपका कर्त्तव्य है। यदि आपको सर्व प्रकार से सहायु-भूति व सहायता होती रही तो थोड़े अर्से में ही जैन-गुरुकुल, व्यावर जैन विश्वापीठ बन सकेगा।

पत्र-व्यवहार का पता.—

मन्ना, जैन-गुरुकुल, व्यावर.

# शिक्षार्थी सुन्दर सस्ती

और

उपयोगी पुस्तकें ।

१—जैन शिक्षा-भाग १ -)॥	१८—मोक्ष की कुञ्जी २ भाग)॥
२—जैन शिक्षा-भाग २ =)॥	१९—आत्माबोध भाग १-२-३ १-)
३—जैन शिक्षा-भाग ३ ≡)	२०—आत्मबोध भाग २-३ ≡)
४—जैन शिक्षा-भाग ४ (सचित्र) ≡)॥	२१—काव्य विद्यसु -)॥
५—जैन शिक्षा-भाग ५ ७-)	२२—परमात्म प्रकाश =)
६—वाल्मीकि )॥	२३—भाव अनुपूर्वि -)
७—भादशां जैन १)	२४—मोक्ष नी कुञ्ची वेभाग १)
८—भादशां साधु १)	२५—सामायिकप्रति०प्रश्नोत्तर)॥
९—विद्यार्थी व युवकों से =)	२६—तत्त्वार्थाधिगमसूत्रम् ≡)
१०—विद्यार्थी की भावना -)	२७—आत्मसिद्धि )॥
११—सुखी कैसे बनें ? -)	२८—आत्मसिद्धि और सम्मत्त्व)॥
१२—धन का दुरुपयोग )॥	२९—धर्मों में भिन्नता )॥
१३—रेशम व चर्बी के वस्त्र )॥	३०—जैनधर्म पर अन्य धर्मों का प्रभाव
१४—शुद्ध कैसे रहे ? =)॥	३१—समकित के चिह्न १ भाग )॥
१५—आत्म-जागृति-भावना १)	३२—समकित के चिह्न २ भाग )॥
१६—समकित स्वरूप भावना -)॥	३३—सम्यक्त्व के आठ अंग ≡)
१७—मोक्ष की कुञ्जी १ भाग ≡)	३४—महावीर और कृष्ण ≡)

व्यवस्थापकः—

आत्म-जागृति-कार्यालय, ठि० जैन-गुरुकुल, न्यावर.

नथमल लक्षिया द्वारा

प्रेस ( केंसरगञ्ज इ.क.जाने के पास ) भद्रमे ( में छपी ।

